UNIVERSAL LIBRARY

OU_182440

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81·6 | R14P Accession No. G.H. 1750

Author रघुवीर शरण ।

Title परतन्त्र ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

परतन्त्र

राष्ट्रीय-महाकाव्य

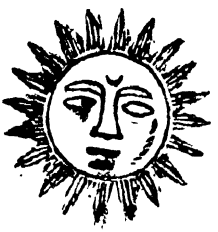

रचयिता

श्रीरघुवीरशरण "मित्र"

प्रकाशक

अ. भा. राष्ट्रीय साहित्य प्रकाशन परिषद्

बसन्त पञ्चमी] प्रथमावृत्ति [संवत् २०००

मूल्य चार रुपये

राष्ट्रीय प्रेस जयपुर

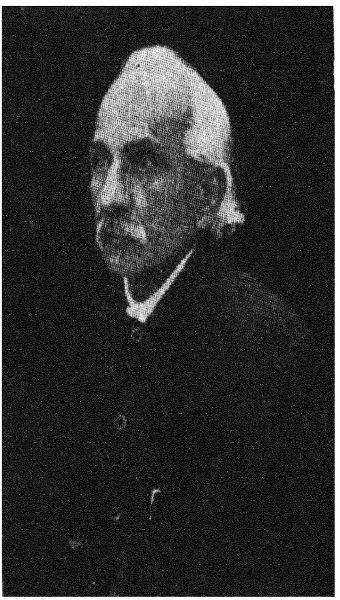

ज्योतिर्मय शहीद

श्री पं० प्यारेलालजी शर्मा

जिनकी—
पवित्र स्मृति में स्वतन्त्रता का दीपक
जलाने की शक्ति
च म च मा
रही है

जिनके—
बलिदान में विजयलक्ष्मी और
जाज्वल्य जीवन-ज्योति
जगमगा
रही है—

उन्हीं
श्रद्धास्पद ज्योतिर्मय
श ही द
श्री पं० प्यारेलालजी शर्मा
को——

शहीद

वीर सदा मर कर जीते हैं,
मृत्यु नहीं है यह जीवन।
धन्य धन्य बलिदान पुजारी!
किया मृत्यु का अभिनन्दन॥

हाथों में हथकड़ियाँ पहिने-
अधरों पर धर विष-प्याली-
माँ का पूजन करने निकले;
लेकर पूजा की थाली॥

पैर चूमती चलीं बेड़ियाँ-
झनझन झनझन झनकरतीं;
मौतें चलीं नाचती गातीं;
रुनन झुनन टन टन करतीं॥

'शीश हथेली पर धर अपना' ;
'सर से कसकर चले कफ़न'।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन ॥

पहिन बेड़ियाँ बन्दीगृह में ;
बारम्बार गये बन्दी।
वहीं दिवाली, वहीं दशहरा ;
वहीं बितादी नौचन्दी ॥

झनझन झन हथकड़ियाँ बोलीं ;
पैरों में बेड़ी बोलीं।
वीर ! मृत्यु से खेल रहे हो ;
हँस हँस लोहू से होली ॥

चले गये तुम निज शोणित से-
ढीले कर माँ के बन्धन।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन ॥

जीवन की अन्तिम घड़ियाँ भी;
पहिन काट दीं हथकड़ियाँ।
वे राखी थीं वीर ! तुम्हारी ;
वे थीं फूलों की लड़ियाँ ॥

खेल खेलती थी जीवन से ;
मानस में यौवन-बाला ।
धधक रही थी अन्यायों से ;
अन्तर में दुर्द्धर ज्वाला ॥

उसे बुझाने वीर ! चले थे ;
तन-सागर का ले जीवन ।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन ॥

ढलती हुई जवानी बोली–
शैलों से टक्कर लूंगी ।
तोड़ गिरा दूंगी चट्टानें ;
सागर आज सुखा दूंगी ॥

सूर्य, चन्द्रमा, नभ के प्रहरी ;
मुट्ठी में दिखला दूंगी ।
तड़का दूँगी हथकड़ियों को ;
जीवन-ज्योति जगा दूंगी ॥

पैर चूम कह उठीं बेड़ियाँ;
वीरों का मरना जीवन ।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन ॥

अन्तिम श्वासों ने शहीद के ;
शङ्ख युद्ध का बजा दिया।
फूलों की अर्थी पर हमने ;
शव झण्डे में सजा लिया ॥

अर्थी कन्धे पर जब रक्खी ;
फूल गिरे नभ-मण्डल से।
कन्धा देने को लोगों के-
दल उमड़े पृथ्वी-तल से ॥

हिन्दू मुसलमान दोनों के-
नयन बने सावन के घन।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन ॥

लेकर अर्थी चली भीड़ जब ;
गूँज उठे जय के नारे।
प्यारे-"प्यारे-लाल" लाल से ;
बने लोचनों के तारे ॥

चले दृगों से नीर बहाते ;
झण्डे ले-लेकर भोले।
बोले जय; भारत माता की ;
जय, शहीद की जय बोले ॥

इसका रक्त स्वतन्त्र करेगा ;
बोल उठे प्रतिध्वनि में मन।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन॥

अर्थी करुण-कहानी थी या;
उठती हुई जवानी थी।
भारत पर मिटने वालों की ;
या साकार - कहानी थी॥

गङ्गा तट पर फिर शहीद की ;
अर्थी ले जा कर धर दी।
आँसू बहा बहा जनता ने ;
एक और सरिता भर दी॥

शैल रोये, रोया नभ-मण्डल ;
सिसक सिसक बोला रोदन।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन॥

अर्थी के आगे रोती थी ;
एक तरफ जनता सारी।
और दूसरी ओर खड़ी थी ;
उसकी पत्नी बेचारी॥

जिसने रोते रोते अपने-
हाथों की चूड़ी फोड़ी।
अलकों का सिन्दूर पूछ कर;
घूसों से छाती तोड़ी॥

बिछवे तोड़े; रोली पूछी;
तोड़ दिया अपना जीवन।
वीर सदा मर कर जीते हैं,
मृत्यु नहीं है यह जीवन॥

गङ्गा तट पर उस शहीद की-
चिता बनाई चन्दन की।
शव रक्खा था; धरी हुई थीं,
साथ बेड़ियाँ बन्धन की॥

बिना जलाये धधक उठी वह;
चिता हृदय की ज्वाला से।
भूखों के खाली पेटों से;
या मुण्डों की माला से॥

आग उठी या हथकड़ियों से;
बजीं बेड़ियाँ जब झन झन।
वीर सदा मर कर जीते हैं;
मृत्यु नहीं है यह जीवन॥

स्वतन्त्रता का अमर-पुजारी ;
बन कर के इतिहास उठा।
श्वास श्वास शोले बन उट्ठे ;
प्रलयंकर आकाश उठा॥

खाली झोली; जलती होली,
बन्दी आज हुई रानी।
देव ! करो स्वीकार प्रेम से,
कवि की आँखों का पानी॥

आँसू की दो चार बूँद ही,
देता कवि कर कर क्रन्दन।
वीर सदा मर कर जीते हैं ;
मृत्यु नहीं है यह जीवन॥

जो जीवन भर बजा बेड़ियाँ,
जन्म देश पर चढ़ा गये।
बलिवेदी पर निज हाथों से,
जो अपने सर चढ़ा गये॥

वे शहीद बैठे अतीत की-
गोदी में मुसकाते हैं।
इतिहासों में गीत उन्हीं के,
कवि के आँसू गाते हैं॥

उर-ज्वाला वह चली दृगों से,
आग लगा देगा रोदन।
वीर सदा मर कर जीते हैं,
मृत्यु नहीं है यह जीवन॥

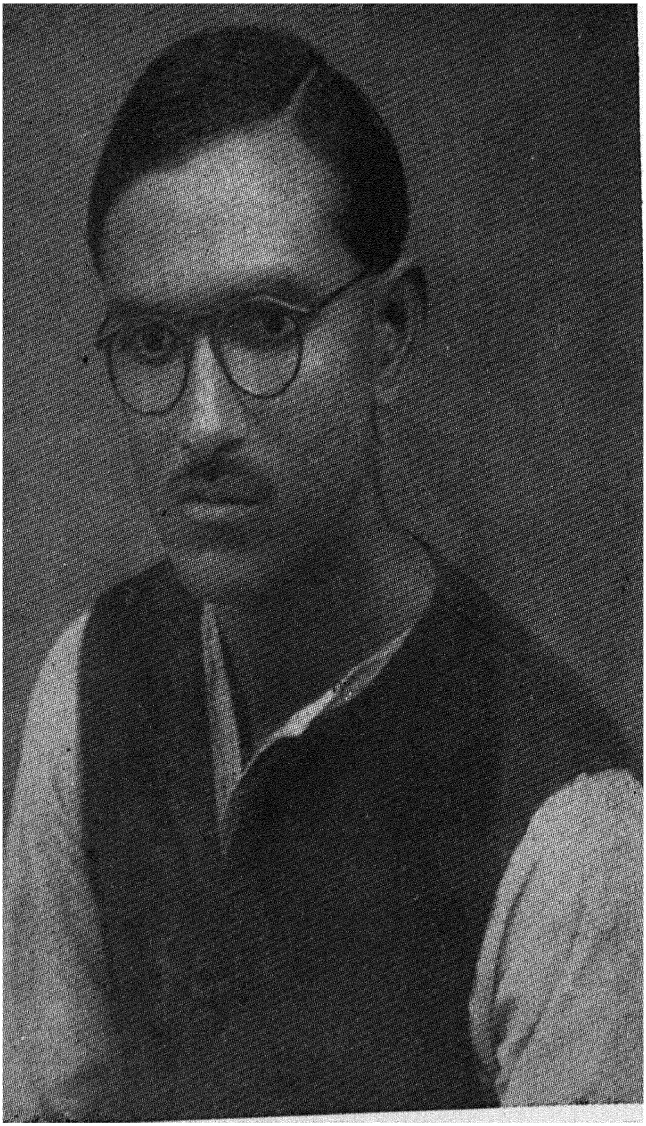

माँ !

तुम्हारा कान्त-कुन्दन-किरीट; क्रूर; कुत्सित कपटियों के कुचक्रों से कुचल कर, अन्याय के सर पर धरा हुआ है; लोलुप; लम्पट, लुटेरे, तुम्हारे लालों के लोमहर्षण-लहूलौहित्य की लोल लहरों में गोते लगा रहे हैं; तुम्हारे भाल का मणि-मण्डित मुकुट छत्र; चारों ओर बहती हुई शोणित-धाराके बीच बैठी समर-सम्राज्ञीके सर पर सुशोभित हो रहा है; और तुम्हारे सर पर लोहे का जाल पड़ा है। तुम्हारे उर का अलौकिक हार, जिसमें त्रिलोक की समस्त कलायें केलि कर रही हैं, आज सिंहासन पर विराजमान सम्राज्ञी के उर में पड़ा है, और तुम्हारी छाती पर सर्पिणी-जिह्वा लप लपा रही है; तुम्हारे कोमलकरों के कङ्कन किसी की कठोर कलाइयों में झिलमिल झिलमिल जगमगा रहे हैं, और तुम्हारे हाथ हथकड़ियों से जकड़े हुए हैं, तुम्हारे पैरों के अनोखे लच्छों की झनकार राजछत्र

के नीचे बैठी हुई अधीश्वरी के कानों में पड़ रही है और तुम्हारे पैरों में पड़ी शृङ्खलाओं की झन-झनाहट भारत के अणु अणुमें सुनाई दे रही है। अम्बे !

सागर, शैल सरिताओं के कलकल करते स्वच्छ सलिल से सिंचित शस्यश्यामल हरियाली तुम्हारी साड़ी थी, आज चारों ओर जलती हुई ज्वाला ही तुम्हारी साड़ी है, हा माँ ! तुम्हें जलती देख कर भी वीर सुपुत्र "लम्बी ताने सो रहे हैं," तुम्हारे चारों ओर जलती हुई आगकी भयानक लपटों से उनका लहू नहीं गर्माया, तुम्हारी धोती पर पड़े रक्त के छींटे देख कर भी उनका खून नहीं खौला।

जननी !

जिनकी रक्त-प्रसविणी तलवार युद्धांगण में अगणित रिपु-मुण्डों के ढेर लगा देती थी जिनके सामने अरि की अगणित सेना आती हुई थर्राती थी; जिनके वक्ष पर पड़ते ही भालों की नोकें टूट जातीं थीं; वेही कामिनियों के कठोर कुचोंसे घायल होकर चिकित्सालय में पड़े हैं। जिनके कानों को विद्युत सी चमकती हुई तलवारों को

झनझनाहट रिझाती थी आज उन्हें नूपुर की मधुर मधुर ध्वनि रिझा रही है। जिन वीरों ने अपनी माँ को दिग्विजयिनी बना दिया था; आज वे ही अपनी माँ का शोणित पीकर अपनी पिपासा शान्त कर रहे हैं। आदर्श आत्मायें हत्यारी बन गई हैं, सिंह शृगाल बन गये हैं; खड्गों की खनन खनन में चलने वाले युवक कामिनियों के कठोर कुचों से कुचले जा रहे हैं। भारत चालीस कोटि विजेताओं का पिता है और परतन्त्रता भारत की चिता जिसमें चत्वारिंशत पुत्र अपने पिता को जीवित जला रहे हैं; घर के दीपक घर में प्रकाश न कर के घर में आग लगा रहे हैं।

वात्सल्य-मूर्ति !

इस आग को बुझाने के लिये, तुम्हारे लोचन-सागर में से कुछ आँसू चुग-चुग कर काव्य-गागर में भर रहा हूँ. जिसका कुछ अंश धधकती हुई ज्वाला पर छिड़क कर न्याय की वह ज्वाला सुलगाने आया हूँ कि जिसे सरिता, सागर, सावन भी अपनी समस्त शक्ति लगा कर न बुझा सकेंगे।

शुचयन्तरे !

तुम्हारे पैरोंमें पड़ीं हुईं बेड़ियोंकी झनझनाहट

कानों के पर्दे फाड़े, डाल रही है, तुम्हारे आँसू देख कर अन्तस्तल में ज्वालामुखी सुलग रहा है ; और अन्तरतम से फूट रहे हैं जलते अङ्गारे। बलिवेदी पर चढ़े हुए सरों के ढेर बोल रहे हैं, किन्तु न पहुँची आवाज़ सोते सिंहों के कानों तक, उनके कानों तक तुम्हारी करुण पुकार पहुँचाने के लिये तुम्हारे सच्चे प्यार के साथ, हथकड़ियों की झनकार के साथ, अन्तस्तल के अङ्गार के साथ आततायी के अत्याचार के साथ, जीवन की हार के साथ, पीड़ाओं के संसार के साथ, भूखे भारत की पुकार के साथ, रक्त-पारावाक के साथ, भिक्षुक बन कर बलिवेदी पर खड़ा हुआ शङ्खनाद कर विश्व-शान्ति का आवाहन कर रहा हूँ।

हमारा सम्राट आपत्ति में है, हमारे देश को जलाने के लिये चारों ओर से ज्वालायें उठ रही हैं, युद्ध के धधकते यज्ञानल में, मानव-समाज भस्मीभूत हुआ जा रहा है।

दया करो दयासागर !

* शु भ म् *

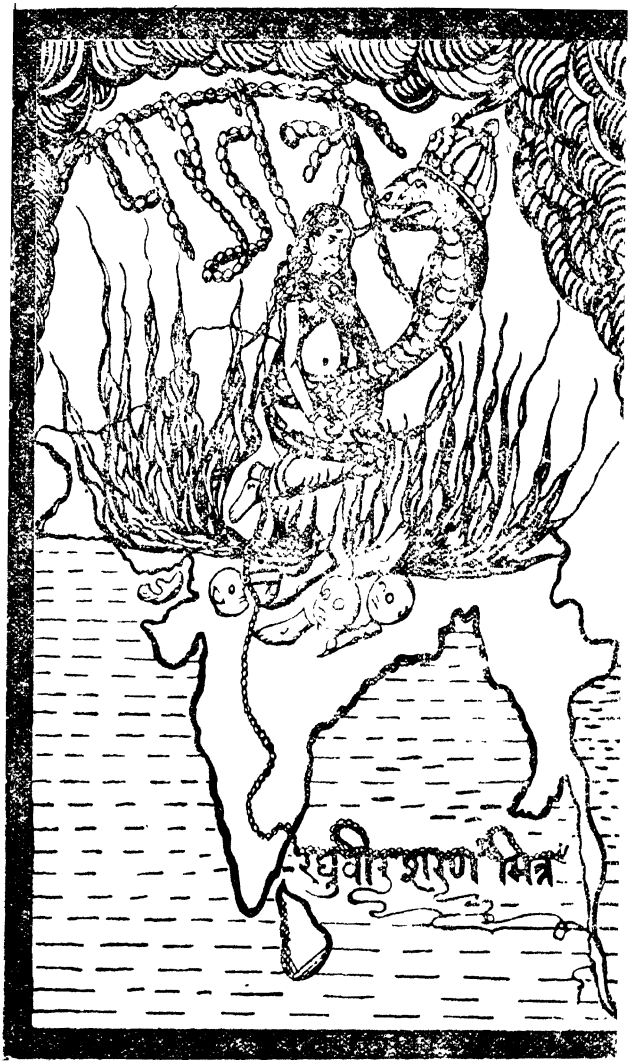

बच बेटियाँ मदिरा पीते, हँसते नर कङ्कालों में।
बजें बेड़ियाँ निकले ज्वाला, आग लगे इन प्यालों में॥

❀ अनुक्रमणिका ❀

		विनय	*	१
प्रथम सर्ग	*	विध्वंसिनी	*	७
द्वितीय सर्ग	*	बलिदान	*	२०
तृतीय सर्ग	*	अवरोहण	*	३६
चतुर्थ सर्ग	*	पतझड़	*	५०
पञ्चम सर्ग	*	श्रमिक	*	६१
षष्ठ सर्ग	*	राखी	*	६७
सप्तम सर्ग	*	भावना	*	८३
अष्टम सर्ग	*	दुखियारी	*	९६
नवम सर्ग	*	फांसी	*	१००
दशम सर्ग	*	कवि	*	१०९
एकादश सर्ग	*	प्रतिज्ञा	*	११२
द्वादश सर्ग	*	आवाहन	*	११६
त्रयोदश सर्ग	*	आहुति	*	१२१
चतुर्दश सर्ग	*	क्रान्ति	*	१३१
पञ्चदश सर्ग	*	अभिषेक	*	१४२

शहीदों की चिताओं के समीप

कल कल करती

सुरसरी के स्वच्छ तट पर

अश्रु-वेला में

१२ जनवरी सन् १९४४

विनय

सुखप्रद सुषुप्तिकनाथ! हे करुणेश! करुणागार हो।
रघुवीर! हे वटपत्रशायी! दीनके भरतार हो।
हे नाथ! द्युति-अम्लान में, अब शरण मुझको दीजिये।
होकर सजग शुचि! शेष शैया से व्यथा सुन लीजिये ॥१॥

'हलधर' अनुज होकर कहो क्यों आज 'हलधर' भूलते?
होकर अनुज; क्यो त्याग प्रिय-भ्राता मुदित-मन झूलते।
हे चक्रपाणी-कृष्ण! क्यों अब हलधरों से दूर हो?
आसीन व्रीड़ा से रहे; या आज मद में चूर हो ॥२॥

'वृषभानुजा' से कर प्रणय, 'वृषभानुजा' क्यों त्यागते।
निष्पाप का क्या वृजन है, जो दूर उस से भागते।
तृण खा स्वयं जीवित रहें पर पय पिलातीं प्यार से।
प्रतिकार उसका क्या यही, निशि दिन कटें असि-धारसे ॥३॥

कल पा रहे थे जन नहीं अरि कंस के जिस काल में।
संवेदना सम्प्रति वही, कलपा रहीं इस काल में।
बन्दीभवन था 'देवकी, वसुदेव' ने मन्दिर किया।
संवेदना से हो गया था द्रवित तब तेरा हिया ॥४॥

इस काल भी बन्दीभवन को, नाथ ! मन्दिर कर दिया।
प्रभु ! आज कारावास ही में, देश ने पूजन किया।
पश्चिम दिशा जब 'मित्र' जाते, और होती साँझ है।
झनकार नूपुर की क्वणित होती वही बस झाँझ है ॥५॥

प्रभु ! तान तसले पर लगाते हैं अनोखे चाव से।
घड़ियाल थालों को बजाकर, हम बुलाते भाव से।
टन टन टनन टन टन टनन का, गूञ्जता आह्लाद है।
फिर मौन क्यों अबतक तुम्हारा 'शङ्ख कावह नाद' है ॥६॥

तेरे लिये नव भावना अब हो रहीं सत्येष्ट ! हैं।
हे नाथ ! सरसों-सुमन से, माला रचाते श्रेष्ठ हैं।
शुचि-शङ्ख की ध्वनि गूञ्जती है बन्दियों के घोष की।
अब अर्चना को छोड़कर, विधि कौन तेरे तोष की ॥७॥

प्रिय-बन्दियों ने ज्योति अब, त्रसरेणु की त्राता ! रची।
हे ईश ! अन्तर में कहो फिर क्यों नहीं हल-चल मची।
तुम हो बधिर तुमको व्यथा माँ की सुनाने के लिये।
मैं रच रहा हूँ काव्य अब प्रभु को रुलाने के लिये ॥८॥

कर जोड़ आया शरण में, मुझ पर अनुग्रह कीजिये।
प्रभु ! जो रुलायेगा तुम्हें उसको शरण में लीजिये।
आँचल पसारे मैं खड़ा मुझ पर कृपा अब कीजिये।
मदिरा मुझे पागल बनाने की पिला प्रभु ! दीजिये ॥९॥

कर नमन भिक्षा माँगता माँ भारती ! करुणा करो।
माँ ! लेखनी में पुत्र की अद्भुत-अलौकिक बल भरो।
गुरु देव को करता नमन, गुरुदेव ! करुणा कीजिये।
करते निरन्तर हो दया, अब भी शरण में लीजिये ॥१०॥

अन्धा जगत है आज कल यौं, त्रास मन में हो रहा।
गुण से न अब होते गुणी, यह सत्य रोना रो रहा।
हृत्पिण्ड कम्पित हो रहा, यह बीसवीं है अब सदी।
अब 'मित्र' ! जो गुणसे गुणी 'संयोग है नौका नदी' ॥११

यह आत्म सुश्लाघा नहीं मुझको न कुछ भी ज्ञान है।
पर पुत्र भारतवर्ष का हूँ बस यही अभिमान है।
सन्धान दोषों का करो गुण त्याग कर आलोच को।
इस धारणा को देख कर अब सोच होता सोच को ॥१२॥

फिर सोच मुझको हो न क्यों, मैं काव्य गुणसे हीन हूँ।
'ध्रुव सत्य' चित्रित कर रहा, माँ रो रही मैं दीन हूँ।
वर्णन उसीका कर रहा करना क्षमा आलोच को।
यह प्रेम से पढ़ना पढ़ाना मत रुलाना पोच को ॥१३॥

खल-जन ! तुम्हें करता नमन करना क्षमा तुम 'मित्र'को।
मत त्याग देना 'मित्र वर ! उपहास कर इस चित्र को।
मैं सृष्टि जो भी कर रहा संकीर्णता का भय मुझे।
पर रक्त की माँ घूँट पीती पय पिलाना है तुझे ॥१४॥

होकर सदय अब पण्डितो ! मुझपर अनुग्रह कीजिये।
मुझ अज्ञ को भी अब शरण में विज्ञ-जन ! ले लीजिये।
बल बुद्धि भक्ति, सुभावना शुभ-ज्ञान के भण्डार हो।
मैं दण्डवत करता तुम्हें, स्वीकार-हो स्वीकार हो ॥१५॥

युग-पाणि अपने जोड़ कर करता नमन मैं 'व्यास' को।
फिर हो प्रफुल्लित नमन करता भक्त 'तुलसीदास को'।
मानस-सरोरुह विकसते, जिनके भणित शुचि 'मित्र' से।
जड़ जाड्य तज ज्ञानी बनें जिनके भणित शुभ चित्रसे॥१६॥

कवि-कृष्णकी, कवि आदि की, कर जोड़ पद रज सिरधरूँ।
प्रभु ! इष्ट 'मित्र' कवीन्द्र को कर जोड़ अभिवादन करूँ।
कवि-कर्म सागर है महा मैं जा रहा उस ओर हूँ।
पग देख कर रोता हुआ मैं, सत्य-मानव ! मोर हूँ ॥१७॥

कवि आदि ने पर रच दिया पुल पार जाने के लिए।
शुभ-सुगम-पथ कविने किया कविता बनाने के लिए।
प्रभु ! मानुषी कल्याण हित शुभ-सार जिस जिसने मथा।
इतिहास, दर्शन, शास्त्र-सुन्दर वेद आदिक की कथा ॥१८॥

रवि-रश्मियाँ जो मानवी-अघ-तम भगाने के लिए।
मैं दण्डवत करता उन्हें निर्वाण पाने के लिए।
निज बुद्धि का मानव ! भरोसा लेश मुझ को है नहीं।
ध्वनि यह निकलती हृदयसे जड़ ! ज्ञान तुझको है नहीं ॥१६॥

कहतीं बिलखती मां तनुज ! क्या बेड़ियाँ सुख-दाम हैं ?
रच काव्य मन रख ईश को सबके सहायक 'राम' हैं।
विश्वास है सुनकर रुदन भारत हँसाने के लिये।
प्रभु ! लड़ेंगे अरि कंस से, मां को छुड़ाने के लिए ॥२०॥

उनकी करू मैं बन्दना अब रह गये जो शेष है।
यह है मुकुर सा स्वच्छ मन इसमें न कण भर द्वेष है।
मैं भावनायें भेंट करता प्रणय का उपहार लो।
करता पुनः अब बन्दना, सब 'मित्र' मनका सार लो ॥२१॥

मां के पगों में बेड़ियां, सरपर तनी तलवार है।
समसामयिक कवि वृन्द को अब नमन बारम्बार है।
कलि में अनेको धर्म हैं सबको झुका कर शीश मैं।
करता कथा प्रारम्भ अब रख कर हृदय यदु-ईश मैं ॥२२॥

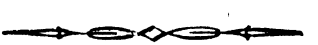

विध्वंसिनी

प्रथम सर्ग

नन्दन-वन था सारा भारत,
खेल जहाँ हँस हँस खेला।
लाती थी शृङ्गार हास्य का,
हँस हँस कर सुन्दर बेला॥

रोज दिवाली रोज दशहरा,
रोज मनाते थे मेला।
फूल फूलते थे कण कण में,
प्यारों का आता रेला॥

तभी एक डायन ने आकर,
जाल यहाँ अपना डाला।
ऊपर से वह अति सुन्दर थी,
अन्तर था उसका काला॥

द्वेष, और झगड़ों का उसने,
पहिना था सर पर झूमर।
जिसके अलक-जाल में उलझा,
भोला-भारत हँस हँस कर॥

अलक-जाल था तर्क-जाल वह,
जिसमें थी भीषण ज्वाला।
जिसमें उलझ न सुलझा भारत;
पहिने थी उलझी माला॥

ज्वाला-मुखी नयन थे उसके;
जिनसे भस्म हुआ भारत।
गहन-नदी थी नाभी उसकी;
जिसमें डूब लुटादी पत॥

चमक रही थी कुछ कहती सी;
अधरों पर रक्तिम लाली।
भारत का शुचि शोणित पीने;
आई थी पीने वाली॥

उस डायन के वक्षस्थल पर;
धरे हुए थे दो गोले।
जिनसे जला दिये भारत के;
बालक तक भोले भोले॥

बुझी न प्यास अभी तक इसकी ;
पीती प्याले पर प्याला।
फूट रही है अन्तस्तल से ;
अब तक वह भीषण-ज्वाला ॥

न जाने कब बुझ पायेंगे ?
इसके जलते अङ्गारे।
जला दिये इसने भारत के ;
अगणित शिशु, हँसते तारे ॥

हाय ! हाय ! भोले-भारत का ;
भाग्य फूट ने फोड़ दिया।
इसने ही क्षत्रिय-वंश की ;
तलवारों को तोड़ दिया ॥

इसने जननी-सुत का शोणित ;
जननी—सुत को पिलवाया।
भारत-वीरों के खड्गों ने ;
भारत वीरों को खाया ॥

लहू पिया राणा प्रताप का ;
भटकाया घाटी घाटी।
रक्त चटाना, राख बनाना ;
यही फूट की परिपाटी ॥

पारतन्त्र्य की ज़ंजीरों से ;
भोला भारत जकड़ दिया।
अपना कपट-जाल फैला कर ;
हँस हँस हमको पकड़ लिया॥

जिसने इससे प्रीत करी थी ;
उस 'जयचन्द' तक को खाया।
बहा बहा शोणित बच्चों का ;
शोणित - सागर लहराया॥

वह दिल्ली शमशान बन गई ;
जली षोडसा घर घर में।
जलती हैं ललनायें लाखों ;
पति-शव ले ले कर कर में॥

इसने लाखों महँदी वाले ;
हाथों की चूड़ी फोड़ीं।
इसने ही देवालय फूँके ;
प्रतिमायें हँस हँस तोड़ीं॥

हिन्दू, और मुसलमानों को ;
यह दिन रात लड़ाती है।
इस भोले भारत को डायन ;
चूस चूस कर खाती है॥

आँखों के आगे गैरों को;
सुधा लुटाती हत्यारी।
खड़ी हुई है लिये सामने;
सर्वनाश की चिनगारी ॥

कपटी ! कुटिला ! क्रूर-व्यालिनी !
रक्त-पिपासी ! मतवाली ॥
कुल-कलंकिनी ! अरी दम्भिनी।
रुला रुला हँसने - वाली ॥

ओ पिशाचिनी ! अरी भक्षिणी !
निष्ठुर ! नाशक भय - ज्वाला !
नीच-दृष्टिनी ! मृषा-भाषिणी !
लिये खड़ी है विष - प्याला ॥

पिला रही है मधु कह कह कर ;
पीते हँस हँस कर भोले।
तेरे लोचन उगल रहे हैं,
कब से प्रलयङ्कर शोले ॥

हाय ! हलाहल को यह भारत,
समझ रहा है अमृत - घट।
अन्तस्तल में भरा हुआ मल ;
ऊपर ढका रेशमी - पट ॥

उसके मलिन हृदय का अब तक ;
मैल न भारत ने देखा।
सुलग रही है; देखो, देखो
मुख पर पैशाचिक—रेखा ॥

कारा में डाला बन्दी कर ;
लोहे की हथकड़ियोँ से।
बना दिया कंकाल देश को ;
जला विषम-फुलझड़ियों से ॥

भोले - बच्चों के मुण्डों की ;
तू पहिने फिरती माला।
समझ न पाया रहस्य अभी तक;
देश फँसा भोला भाला ?

क्या है ? कुछभी समझ न पड़ता ;
उलझी विकट पहेली—है।
मानवता है ; या दानवता ;
तेरी कौन सहेली है ?

व्याला है, या गारुड़ है तू ;
पय, या लहू - पिपासी है।
सज्जनता; दुर्जनता में से ;
किसकी दुष्टा ! दासी है ॥

करकाघन है तेरे उर में ;
तू निगूढ़ धन बतकाती ।
तेरे उर में आग छिपी है ;
तू रस कह कर बहकाती ॥

पाप-पताका लेकर कर में ;
धर्म-ध्वजा कह, लहराती ।
आपस में कट कट मर जाओ ;
'धर्म' ध्वंसिनी ! सिखलाती ॥

चुभा रही है अन्तस्तल में ;
कब से तू तीखे भाले ।
अद्भुत कौतुक दिखलाती है ;
प्याले में लाखों प्याले ॥

तूने भारत में आकर क्यों ;
अपनी मंजूषा खोली ?
नूपुर की झनकार सुनाती ;
आई थी बनकर भोली ॥

घूँघट काढ़े, रुन झुन करती ,
लेकर जादू की झोली ।
सांप बिच्छुओं की झोली क्यों ?
इस घर में ला कर खोली ॥

जिनसे डसवा डसवा हमको,
जलवादीं घर घर होली।
गर्म लहू की लगी हुई है
तेरे मस्तक पर रोली॥

कभी मुसलमानों से जाकर;
तू मीठी बोली बोली।
कभी हिन्दुओं के घर आकर;
जादू की झोली खोली॥

कभी धर्म पर कटवा कटवा;
ढेर लगाये मुण्डों के।
कंगालों के, कंकालों के;
सने लहू से रुण्डों के॥

क्या देते हैं तुझे बता वे;
जिनकी आज बनी दासी।
उनकी ही तलवार बहन है;
तेरी भी असि क्यों प्यासी?

हाय! निहत्थों पर तूने भी;
तीखी — तलवारें तानी।
तूने उसे बनाया बन्दी;
जो कल तक थी पटरानी॥

आज बनी साकार—वेदना ;
दुख से जननी—दुखियारी।
बन्दी बना दिया भारत को ;
हत्या करती हत्यारी !!

करते हैं अभिनन्दन तेरा ;
तेरे घर आने वाले।
पर तू उन्हें डाल पिँजरे में,
डाल दिया करती ताले॥

निष्ठुर ! बन्दी करके लाखों ;
तू अपने घर में लाती।
लहू पिया करती फिर उनका ;
लाज न क्यों तुझको आती ?

करते जो नर स्वागत तेरा ;
उनको डसते हत्यारे।
उन पर उनके बच्चों तक पर ;
चलाचला तीखे आरे॥

आगत-अभ्यागत का स्वागत ;
क्या ऐसे ही होता है ?
क्या बेड़ीं हथकड़ियाँ पहिने ;
अतिथि बैठ कर रोता है॥

स्वागत आगत—अभ्यागत का ;
होता पहिना मणि–लड़ियां ।
पर तू अभिनन्दन करती है ;
पहिना बेड़ीं हथकड़ियाँ ॥

करे अनादर उसका निष्ठुर !
आदर करता जो तेरा ।
करती तू सत्कार अतिथि का ;
डाल सीकचों में डेरा ॥

काल कोठरी में डलवाती ;
डलवा पैरों में बेड़ीं ।
हाथ बाँध देती कड़ियों में ;
टिकें न पृथ्वी पर एड़ीं ॥

ओ निर्मोही ! तू क्या जाने ;
भोले भारत की पीड़ा ।
चुभा चुभा कर भाले उर में ;
तू करती रहती क्रीड़ा ॥

ओ विनाशिनी ! नष्ट किया है ;
तूने भारत का वैभव ।
"पाकिस्तान" नाम से तेरा ;
गूंज रहा विध्वंसक – रव ॥

खण्ड-खण्ड करने आई है;
भोले भारत के डायन।
नशातर लगा रही घावों पर;
हँस हँस कर सुनती क्रन्दन॥

तूने नष्ट भ्रष्ट कर डाली;
फूले फूलों की क्यारी;
कोमल कलियाँ, कञ्चन कञ्चन;
लूटी ललित लाज सारी॥

द्रुम-दल-मृदुल-दुलारी कृषि पर;
तू ने विष लाकर घोला।
टूट पड़ी पुलकित पुष्पों पर;
तू बन प्रलयङ्कर शोला॥

भारत की शुचि सरिताओं में;
तू ने गरल मिला डाला।
आज जवानी पर युवकों की;
तू ने डाल दिया पाला॥

तेरे दम पर नींव धरी है;
डायन! आज लुटेरों की।
तू ने सस्ती—पैठ लगादी;
खोपड़ियों के ढेरों की॥

कोमल कलियों की क्यारी में ;
तू ने कटु काँटे बोये।
डाल दिया दुर्भिक्ष देश में ;
दाने दाने को रोये॥

सारी स्वर्णिल-आभा लूटी ;
तू ने कञ्चन मुकुट छला।
चटखा दिया भाग्य भारत का ;
मार दूर से एक डला॥

पुलकित विकसित सुस्मित स्वर्णिल;
लूट ले गई हरियाली।
डगमग डगमग नाव डोलती ;
उजड़ गई डाली डाली॥

तेरा श्वास श्वास अङ्गारा ;
बन कर हमें जलाता है।
लोहू से लथपथ लोथों के ;
ऊँचे ढेर लगाता है॥

तेरी तृष्णा शान्त न होगी ;
सर्व-नाश तेरे स्वर में।
नागिन ! अब फुङ्कार मार तू ;
जाकर औरों के घर में॥

भारत वासी ! आँख खोल कर ;
देखो इसके अङ्गारे ।
बचो बचो इनसे जलने से ;
जला न दें ये हत्यारे ॥

प्यार भरा जल डाल इन्हों पर ;
अरे बुझादो तुम इनको ।
हमें जलाने को आपस में ;
कोई सुलगाता जिनको ॥

स्नेह एकता के जीवन से ;
बुझ जायेंगे अङ्गारे ।
जल जायेंगे स्वयं आग में ;
डसनेवाले हत्यारे ॥

कोई करता घृणा फूट से ;
अभिनन्दन करता कोई ।
पीकर सुधा अमर है कोई ;
विष पीकर मरता कोई ॥

बलिदान

द्वितीय सर्ग

'लालकिले' में जिसका झण्डा;
गगन चूमता लहराता था।
जिसके सर पर मुकुट छत्र था;
विरुदावली विश्व गाता था॥

काले कम्बल पर बैठा है;
वही 'बहादुरशाह' बिचारा।
लिये सामने खड़ा हुआ है;
'दो बेटों के सर' हत्यारा॥

आँसू गिरा रहा है भोला;
कारा के सूने कोने में।
अन्यायी को सुख मिलता है;
हाय! बिचारे के रोने में॥

कल तक था सम्राट आज वह ;
पड़ा सड़ रहा बन्दीघर में।
कल जिसके कर में सत्ता थी ;
हथकड़ियाँ अब उसके कर में ॥

आज न मणि-मण्डित गहने हैं ;
वृद्ध पड़ा लोहे में जकड़ा।
जली न कारा ; आग न निकली ;
आपस में जब लोहा रगड़ा ॥

तसला दिया बेड़ियाँ डालीं ;
लूट लिया स्वर्णिल थालों को।
दानव बेटों के लोहू से ;
भरभर पिला रहा प्यालों को ॥

क्यों न जली प्रलयङ्कर ज्वाला ?
उसके प्रलयङ्कर श्वासों से ;
सर्वनाश क्यों हुआ न अब तक ;
अभिशापों से ; जन-नाशों से ॥

छल से छीन छत्र छलिया ने ;
फिर कीलों से छाले छीले।
फिर उसके बेटों का शोणित ;
उसको दे कर कहता, 'पीले' ॥

हाय ! 'बहादुरशाह' विचारे ;
का वह वैभव लूटा उसने।
निर्दोषी बालक मरवाये ;
हँस हँस नगर नगर में जिसने ॥

जिससे याद आगई कवि को ;
लहू पिपासी ध्वंसक घटना।
अन्यायी को लगी हुई थी ;
फाँसी देने की जब रटना ॥

देखो उन बेटों का शोणित ;
क्या कहता है वृद्ध पिता से।
गूँज रहा रव वही भयानक ;
अब भी जलती हुई चिता से ॥

हम 'मकबरे हुमायूँ' में थे ;
अरि ने हमें बुलाया छलसे।
ऐसे शोणित पिया हमारा ;
जैसे पानी पीते नल से ॥

करता यदि अरि युद्ध शस्त्र से ;
और न हमें बुलाता छल से।
नाम मिटा देते नाशक का ;
हम भी तलवारों के बल से ॥

अपनों का शोणित गैरों को ;
पर पिलवाया है अपनों ने।
मचवाया विध्वंस देश में ;
कपट भरे झूठे स्वप्नों ने॥

पिता ! न जो छल करते अपने ;
तो क्या ऐसे मारे जाते।
खण्ड खण्ड करते हडसन के ;
हम भी 'दो दो हाथ दिखाते'॥

बन कर 'मीठी छुरी' सगों ने ;
रिपु से मिल कर हमें मिटाया।
हम तलवार उठाने को थे ;
पर उसने हमको बहकाया॥

हत्यारे- हडसन को उसने ;
हाय ! हमारा 'मित्र' बताया।
जिसने ज़ीनत महल और फिर ;
उसका सब परिवार जलाया॥

जिसने लाखों ललनाओं के ;
अलकों का सिंदूर मिटाया।
जिसने सड़क और गलियों में ;
भोले—बच्चों को मरवाया॥

जब हम आय सामने उसके ;
उसने क्रूर—दृष्टि से देखा ।
लाल लाल लोचन थे उसके ;
मुख पर थी पैशाचिक - रेखा ॥

चला लिवाकर बन्दी करके ;
रथ में बठा हमें हत्यारा ।
जब आ पहुँचे रक्तद्वार पर ;
रथ से नीचे हमें उतारा ॥

पहले हमें कराया नङ्गा ;
फिर ले ली पिस्तौल हाथ में !
लाल लाल लोचन नाशक के ,
अङ्गारे बन गये साथ में ॥

घुसने लगीं हमारे उर में ;
एक एक कर तीखी गोली ।
अगणित चला गोलियाँ उसने ;
खूब रक्त से खेली होली ॥

महानाश के हत्यानल में ;
डाले बालक भोले भाले ;
फिर आकर छाती पर बैठा ;
भर भर पिये लहू से प्याले ॥

नयनों में होली जलती थी;
रक्तधार से खेली होली।
हत्याकाण्ड हुआ जब ऐसा;
सहसा दशों दिशायें बोली॥

दुर्घट–हत्याकाण्ड हुआ है;
आज भयानक भारत भर में।
फाँसी लगवादी नाशक ने;
गली गली में डगर डगर में॥

बरस रहे हैं बालक बूढ़े;
और भोलियों पर अङ्गारे।
दीवारें रँग गई लहू से;
बहने लगीं रक्त की धारें॥

चरबी लिथड़ गई भीतों पर;
आमिष लगा आग में गिरने।
गली गली में डगर डगर में;
लगे रुधिर के झरने झरने॥

रोग़न बना वसा आमिष का;
रँगा किवाड़ों को घर घर के।
छकड़े के छकड़े जाते हैं;
लाशों के मरघट भर भर के॥

आज हड्डियों के चूरे से;
छूटी हुई हैं सड़कें सारी।
आज अस्थियों के ढाँचों से;
सजी हुई हैं क्यारी क्यारी॥

लाल लाल जल लाल लाल थल;
लाल लाल नभ दीख रहा है।
क्या शोणित से खेल खेलना?
नभ मण्डल भी सीख रहा है॥

हत्या! हत्या! हत्या! हत्या;
भोला भारत चीख रहा है।
अग जग है निस्तब्ध लहू का;
मेह बरसता दीख रहा है॥

रुण्ड मुण्ड के झुण्ड पड़े हैं;
धधक रही हत्या की ज्वाला।
डर भी डर कर कांप रहा है;
खाली है पापी का प्याला॥

शोषक शोणित शोषण करते;
लोहित जिह्वा निकल रही है।
अपने ज्वाला-मुखी पेट में;
नन्हे बच्चे निगल रही है॥

भारत भस्मीभूत हुआ है;
जले शवों के ढेर पड़े हैं।
लोहू से लथपथ लोथों पर;
लहू पिपासे आज खड़े हैं॥

शोणित शैवलिनी में हँस हँस;
दानव आज निमज्जन करते।
धर्म-धरित्री धधक रही है;
उर पर जलते शोले धरते॥

अगणित ढेर पड़े लाशों के;
जिनको खूँद रहे हत्यारे।
डगर डगर को नगर नगर को;
रँगती गर्म लहू की धारें॥

सड़कों पर शव पड़े हुए हैं;
गिद्ध नोच कर आमिष खाते।
पड़े हुए शव-ढेरों पर से;
दौड़ सवारों के दल जाते॥

लगे फूटने उत्स लहू के;
पृथ्वी तल से नभ तक ऊँचे।
नभ-मण्डल रँग गया रक्त से;
बरसा फिर वह शोणित नीचे॥

अरे उसी शोणित की इनके,
दीख रही है मुख पर लाली।
उसी लहू की चमक रही है,
अब भी 'लाल किले' पर लाली॥

रक्त चिह्न उसके उर में हैं,
वह अतीत के गीत गा रहा।
घाव दिखाता अपने उर के,
कहता, याद अतीत आ रहा॥

कहता है मैं ने देखा है,
भीषण हत्या-नल हडमन का।
कहता नाद सुना है मैं ने,
उसके गोलों के दन दन का॥

दिखा रहा है रक्त-द्वार को,
जिस पर पड़े रुधिर के छींटे।
दिखलाता है अपने उर की,
रँगी हुई शोणित से ईंटें॥

सरिता, हारी, सागर हारा॥
सावन ने ये दाग़ न धोये।
धुल न सकेगा रंग क़िले का,
सरिता, सागर सावन धोये॥

अरे इन्हें ना धो सकती है,
बहकर पुनः लहू की धारा।
भर सकते हो घाव हृदय के,
झण्डा लगा तिरङ्गा प्यारा॥

इतने बुझ न सकेगी जल से;
जलती हुई चिता मैना की।
अरे जलोगे; और जलेगी;
इतने हृदय—लता मैना की॥

रँगा पड़ा इतिहास लहू से;
आता मेरा मानस भर भर।
सुन न सकोगे; गा न सकूँगा;
फट जायेंगे पत्थर—अन्तर॥

अरे! उड़ाया है तोपों से;
बाँध बाँध कर ललनाओं को।
गुप्त अङ्ग से खेल खेल कर;
हाय! रुलाया माताओं को॥

भाले भोंके; छाती काटी;
जीवित धरती में गाड़ा है।
उस दिन से अब तक दानव ने;
भारत का शोणित काढ़ा है॥

अगणित मस्तक चढ़े हुए हैं;
इनकी प्यासी तलवारों पर।
न जाने कितनी ललनायें;
आँसू गूथ रही है घर घर॥

श्वेत धोतियां पहिने बैठीं;
पड़े रक्त के छींटे जिन पर।
'चूड़ी ले लो' चूड़ी ले लो;
आँच गिराती यह ध्वनि जिनपर॥

चूड़ी बिल्लोरियाँ काँच की;
मनिहारिन आ बेचा करती;
ये पीड़े पर बैठीं बैठीं;
सुन सुन कर ध्वनि आँखें भरतीं॥

चक्की पीस—पीस बेचारी;
अपना जीवन काट रहीं हैं।
भैया—दोयज के दिन कितनी;
बहिनें 'आँसू चाट रहीं हैं'॥

न जाने कितनों के घर पर;
औंधे तवे पड़े रहते हैं।
लगी हुई कालिमा मुखों पर;
दुख-साकार झड़े कहते हैं॥

जब से राज्य हुआ है इनका ;
चमक रहीं निशिदिन तलवारें ।
आओ ; देखो ; दिखलाऊँ मैं ,
कितने हत्यारों ने मारे ॥

मार दिए सुखदेव, भगतसिंह ,
राजगुरु इन हत्यारों ने ।
इनकी असि थी ; ढाल बने सर ;
कृपा शान्त की तलवारों ने ॥

वे तो चढ़ा गये जीवन पर ;
अब तक सोता देश न जागा ।
हमें सताने वाला दानव ;
अपना बिस्तर बांध न भागा ॥

वह देखो उस सतलज तट पर ;
ढेर राख के बोल रहे हैं ;
मोल स्वतन्त्रता का जीवन से;
करते तीनों डोल रहे हैं ॥

मिटने वाले मिटे नहीं हैं ;
उनकी जग में अमर कहानी ।
नाशक हारा पर तीनों की ;
मिटी न उठती हुई जवानी ॥

सतलज की लहरों में देखो,
उनका यौवन खेल रहा है।
उनका अमर जवानी ही से;
मेल रहेगा, मेल रहा है॥

पारतन्त्र्य की लगी ग्रन्थियाँ;
अब भी तीनों खोल रहे हैं।
सुनने ही से नाम उन्हीं के;
नाशक के मन हिल रहे हैं॥

तेल छिड़क कर जिन्हें जलाया,
उनसे आग लगेगी कैसी!
रावण के सीता हरने पर,
आग लगी लङ्का में जैसी॥

जहां जलाये थे शव उनके,
वहां लगेगा दैनिक मेला।
कभी राज्य उनका भी होगा,
जिनके पास नहीं अब धेला॥

तभी चिताओं पर वीरों की,
चढ़ा करेंगे फूल बतासे।
पुछ जायेंगे मा के आंसू,
बजा करेंगे घर घर ताशे॥

देवालय कल वहाँ बनेंगे,
जलीं चितायें आज जहाँ पर।
दादा भाई नौरोजी की;
प्रतिमा होगी एक वहाँ पर॥

आक्टे ब्रियन ह्यूम की प्रतिमा;
पुजती होगी घर घर में कल।
मिटने वालों की प्रतिमा से,
अमृत झलक रहा प्रिय छल छल॥

फूल चढ़ेंगे 'तिलक' गोखले-
की प्रतिमा पर दुनिया भर में।
आग लगाई यहाँ जिन्हों ने,
आग लगेगी उनके घर में॥

प्रिय प्रयाग जाना शहीद का,
एक निराला मन्दिर होगा।
बलिवेदी पर हँसता खिलता,
रक्खा शेखर का सर होगा॥

शुचि स्वतन्त्रता का दीवाना,
जीवन भर आजाद रहा है।
मरते मरते भी शेखर ने,
अपने को आजाद कहा है॥

या तो थे राणा प्रताप;
या शेखर की तलवार दुधारी।
ये थे अमर—पुजारी जिनसे;
सारी राज्य शक्ति थी हारी;

जीवन भर स्वायत्त रहे ये;
बन्दी हुए न असि - नाशक से।
चले गये वे इस दुनिया से;
टक्कर ले ले कर शासक से॥

जलियाँ वाले बारा में होगा;
मन्दिर एक शहीदों का कल।
उसके दर्शन की आशा में;
बीत रहा सदियों सा पल पल॥

देश धर्म की हाला पीकर;
बने हुए थे जो मतवाले।
कल मन्दिर मसजिद में मानव!
पुजा करेंगे मिटने वाले॥

वीर 'यतीन्द्र नाथ' के मन्दिर;
बन जायेंगे डगर डगर में।
'बिस्मिल, लहरी, खुदीराम' के;
मन्दिर होंगे नगर नगर में॥

प्रतिमा पर 'असफ़ाक़' वीर की ;
पुष्प चढ़ेंगे दुनिया भर में ।
'शेखर की प्रतिमा के आगे ;
दीप जलेंगे कल घर घर में ॥

'महादेव, देसाई का कल ;
होगा तीर्थ निराला मानव !
मेरठ में भी शर्मा जी का,
सुस्मारक दमकेगा अभिनव ॥

जिनसे बची 'लाज पत' अपनी ;
कल हँस उन्हें सजायेगा जग ।
'लाला जी' की प्रतिमा पर हँस ;
अक्षत फूल चढ़ायेगा जग ॥

जो जो भी बलिदान हुए हैं ;
मातृभूमि पर हँस हँस कर कल ।
फूल चढ़ेंगे मेले होंगे ;
उनकी अमर चिताओं पर कल ॥

अवरोहण

तृतीय सर्ग

परतन्त्र मैं, परतन्त्र भारत की कथा कैसे कहूँ ?
पर धधकते उद्गार ये, अङ्गार से कैसे सहूँ ?
उद्वेद-निस्वन अब निरन्तर हो रहा कैसे हरूँ ?
अन्तर-निहित संवेदना का मैं निधन कैसे करूँ ?

* * *

ज्वालामुखी उरमें सुलगता; शांत हो सकता नहीं ;
विस्फोट उरसे फूटते, क्या; क्लांत रो सकता नहीं ?
ज्वाला बुझाने के लिये यह; व्यर्थ पारावार है।
जब शांत बड़वानल नहीं इस का लगे क्या पार है?

कवि-इन्दु-वाणी इस समय है राहु से पकड़ी हुई,
स्वायत्त थी, नीरव रही; परतन्त्र-वश जकड़ी हुई।
पर राहु से जकड़ा निशाकर-मुख न छिपता है कभी;
तम-जाल शशि के तेजसे क्या, ठहर सकता है कभी?

कविका अमर-अन्तः करण यों, काव्यमें अङ्कित रहे;
मानस-मनीषा; मान को कुसुमावली चित्रित रहे।
शुचि-नीड़ ज्यों मानव-हृदय में; ईशने निर्मित किया,
आनन्द पर जाज्वल्य-तेजस का नहीं भ्रमसे लिया॥

जो भ्रम रहा तो दूर भटकोगे हृदय के भाव से,
यदि सार तुमको चाहिए तो, मनन करना चाव से।
माँ भारती अन्तर्जगत से; कह रही यह आज है;
क्रन्दन-कहानी देश की कहना सुकवि का काज है॥

आदेश जननी ने दिया, मन! खिन्न सहसा हो रहे,
तुम मौन होकर आज अन्तरतम! कहो क्यों रो रहे?
प्रारम्भ गाथा की नहीं फिर धीरता क्यों खो रहे?
मानस! कहो क्यों वेदना-मुख अश्रु-जलसे धो रहे॥

अन्तर! तुम्हारी वेदना अवरुद्ध बाणी कर रही
अभिसारिका मानो कहीं कुल-लाज-असि से डर रही।
अभिसार बिन अभिसारिका, संतोष पा सकती नहीं,
बाणी बिना मनकी कहे, त्यों तोष पा सकती नहीं॥

जो रत्न उज्ज्वल-जग-मुकुटका; पिस रहा वह देश है,
सोना बरसता था जहाँ, सोना रहा अब शेष है।
मोती मणी माणिक्यके, कण कणमें जिसके जाल थे,
जिस देशके उद्यान में, सरसों-सुमन प्रति काल थे॥

घी दूधकी नदियाँ जहाँ प्रिय - प्रेम पारावार था,
धन अन्नसे जिस देशका रहता भरा भण्डार था।
जो दान करते थे कभी दाना न उनके पास है,
दुर्भिक्ष भारत में पड़ा घर घर क्षुधा से नाश है॥

हा! अन्नदाता-कृषक भोले आज मरते भूख से
कर दान, दाने बिन बने वे, चाम सूखे रूख से।
घर चू रहा, नङ्गा बदन, ओले पड़ापड़ पड़ रहे,
मानो सुगंधित सुमन, कूड़े पर पड़े पिस सड़ रहे॥

कृषि पर कृषक जाता भगा, पगमें नहीं पदत्राण हैं,
तन पर फटासा वस्त्र है टिरसे विकम्पित प्राण हैं।
उपमा कहाँ से दूँ, मुझे; मिलते नहीं उपमान हैं,
बस ज्ञात यह होता मुझे बन; जा रहे भगवान हैं॥

वृक्षावली किसलय-करोंसे व्यजन उसपर कर रही;
तृण और हरियाली व्यथा हँस हँस हृदयकी हर रहीं।
प्रिय मिष्ट-ध्वनि अलि-पक्षियोंकी मोदमें भर हो रही;
कृषी कृषक की रानी बनी सब, शोक मनका खो रही॥

शृङ्गार कर-सुर-पुर-परी, बनकर सुकृषि बाला खड़ी ;
रुनझुन झुनन रुनझुन झुनन, मधुका लिये प्याला खड़ी।
कृषि चन्द्रमुखसे झड़ी झरझर, सुधाकी रिमझिम झड़ी ;
प्रिय हरी साड़ी फूल के, आभरण पहिने कृषि खड़ी ॥

कल कल चरस चलता मधुर खेती छटा दिखला रही ;
मानो कृषक उत्सर्ग के कृषि, गीत सुन्दर गा रही।
रवि-रश्मियाँ घन चीर कर छाई हुईं सब ओर हैं ;
शुचि ऊष्ण—औषध शीत की रवि तापकी या कोर हैं॥

देखो बिचारे कृषक को जन-हल चलाता खेत में,
धर हाथपर सूखी हुई, रोटी चबाता रेत में।
रे है भिक्षारी आज वह, जो भीख सबको दे रहा,
सब धन लुटेरे लूटते वह श्वांस ठण्ढी ले रहा॥

यदि ले लिया कुछ ऋण कहीं; तो नष्ट जीवन हो गया,
बस ब्याज ही का पात्र भरने; में सदा को सो गया।
अब शासकों से भी उसे मिलता नहीं कुछ न्याय है,
ये आज न्यायाधीश भी; क्यों कर रहे अन्याय हैं ?

शुचि सुमन-सुन्दर छोड़कर, क्यों कलुष काँटे ले रहे,
उत्कोच ले अन्याय कर, ईमान अपना दे रहे।
जब जल रहीं हैं गेह में बिन अन्न के लाखों चिता,
तब पुत्र ही के रक्त से भरकर चषक पीता पिता॥

दानव बना पीता लहू-प्याला न उसको सोच है,
क्या पीड़ितों का सोच है ? उसके लिये उत्कोच है ॥
न्यायालयों में आजकल, क्या न्यायका व्यवहार है ?
रे ! आततायी के लिये, क्या आज कारागार है ?

अब दण्ड मिलता है उसे जो; सत्य कहता बात है,
बस अंकुशों की मारसे अब; लाल उसका गात है।
उसके लिये हैं बेड़ियाँ; उसके लिये हैं हथकड़ी,
निर्दोषियों ही के लिये हैं; आज दृढ़ सूली गड़ी ॥

उसके लिये वे कोठरी; रहता न जिसमें अन्य है;
रे न्याय कर्त्ताओ ! तुम्हारे; न्याय को बस धन्य है ॥
कैसे अकिञ्चन आज जाकर; रो, पुकारे न्याय को ?
क्या द्रव्य उसके पास है ? रे बाबुओं की चाय को ॥

निर्वाक हैं, कैसे कहे, निर्धन भला अपनी व्यथा ;
न्यायालयों में द्रव्य बिन, कब कौन सुनता है कथा ?
अब न्यायतः न्यायालयों में, द्रव्य का बस न्याय है ;
क्या निर्धनोंको भी कहीं अब हाय मिलता न्याय है ॥

निर्धन वकीलोंके लिये, क्या शुल्क-धन रखता कहो ?
विषपाण प्राडविवाकका, क्या मान सह सकता कहो ?
इस विश्वके अन्याय ही से, आज मन जिसका जला ;
फिर मूल्य उनके तर्क का, कैसे चुका सकता भला ?

पर दोष कुछ इसमें वकीलों; का नहीं है जानलो ;
सब अन्यका ही दोष है, ध्रुव सत्य मनमें मानलो।
जिसने उन्होंके आज हैं ऐसे दिये अन्तर बना ;
पतलून उनको चाहिये, घर में नहीं चाहे चना ॥

अब जो पुलिसकी है दशा, अनभिज्ञ उससे कौन है ?
सब जानते हैं मित्रवर ! पर देश भोला मौन है।
कर्त्तव्य-पथ से विमुख हो अब, काम ऐसे ये करें ;
करते लुटेरे भी नहीं, अन्याय जैसे ये करें ॥

लेकर किसी से विपुल धन ये, झूठ करदें सत्य को ;
जो सड़ रहा वह खा रहे, क्यों छोड़कर शुचिपथ्यको ?
यदि सूचना देने कभी, जायें किसी अन्याय की ;
बस प्रश्न पहला भेंट का, क्या हाट है यह आय की ?

यदि द्यूत होता हो कहीं; उत्कोच लेकर छोड़ दें,
कल 'मित्र' ! इनके हाथमें; चाहे जिधर को मोड़ दें।
जो बैलगाड़ी हो खड़ी; चालान कर लेते तभी ;
मूढ़ा पड़ा हो हाट के आगे पकड़ लेते तभी ॥

यदि पैर गाड़ी पर कभी दो; बैठ कर जायें चले ;
या दीप बिन चढ़ साइकिल पर; रात में आयें चले।
यह प्रश्न करते रोक कर: ओ रे ! बता क्या नाम है ?
जो जेबमें कुछ डाल दो फिर; नाम से क्या काम है ?

भूखा सवारी के लिये, इक्का लिये यदि हो खड़ा;
बस पुलिस वाले का तभी, आ कमर पर डण्डा पड़ा।
'बाबू! चलोगे रेल पर,' लाला! चलोगे शहर को;
ताँगा लिये आवाज़ देता, वह खड़ा दोपहर को॥

पर पुलिस का 'मित्र' वर! इसमें न कुछ भी दोष है:
करते हुए भी दोष मानव! यह सदा निर्दोष है।
हा! क्यों सिपाही पर घृणा की; टूटती तलवार है?
कैसे भला सोलह रुपये में, आज पड़ता पार है?

पर है त्वचा अब श्वेत जिनकी; पेट उनका भर रहा।
क्यों सैनिकोंका आज जीवन, अन्य पर निर्भर रहा?
रे! जब पिता है एक ही फिर; क्यों नहीं निष्पक्ष है?
नवनीत यूरुप; और भारत तक्र करता भक्ष है॥

अब जब पिता ही एक को, दाना तलक देता नहीं;
कहदो शपथ ईमानसे, उत्कोच क्यों लेता नहीं?
अब है कदर्थित हाय! जीवन, अन्यके अपराध से,
उत्कोच निर्दोषी भला, क्या ले रहे शुभ साध से?

शिशु काल से अन्तर उन्होंके, आज ऐसे हो गये;
पग लोह के पदत्राण में पड़, क्षुद्र जैसे हो गये।
हम पढ़ रहे जो सभ्यता बस; पतन उससे हो रहा;
मानो स्वयं शमशान में जा देश भोला सो रहा॥

अब विपुल धन बिन किस तरह, हम पश्चिमी भाषा पढ़ें,
मस्तिष्क मानव ! हो सुशिक्षित; आज फिर नभमें चढ़ें
प्रारम्भ पढ़ने का करें; जब से बटुक इस काल में ;
फिर जब तलक वे 'मित्र' वर ! रहते पड़े इस जालमें ॥

परितोषसे माता पिता; क्या पेट अपना भर सकें ?
पग पैर गाड़ी बिन तनुज; क्या पाठशाला धर सकें ?
बटु एक पैसे की क़लम से; सहस्रों पढ़ते जहाँ -
बहुमूल्य क़लमोंके बिना, क्या लेख लिख सकते वहाँ ?

फिर छात्रशालाके लिये भी, चाहिये धन छात्र को ;
सद आचरण रहकर वहाँ; रहता नहीं है मात्र को ?
व्यय कर रहा है अब पिता; शत शत रुपय प्रतिमासमें ;
सुतको पढ़ानेके लिये; धोती नहीं है पास में ॥

आभूषणों को बेच दे या, आयतन बन्धक धरे !
दिन रात कोल्हू की तरह, पिलता रहे उद्यम करे ॥
खा रोटियाँ सूखी हुई, माता पिता जीवित रहें ।
पर छोड़ने को पश्चिमी भाषा न बेटे से कहें ॥

क्यों नष्ट जीवन कर रहा ? अपना पिता अब आप ही ।
उत्सर्ग जीवन कर स्वतः ; करता भयङ्कर पाप ही ॥
झोंके तनयको आगमें; क्या यह पिता का धर्म है ?
कर नष्ट जीवन तनुजका; करता महा दुष्कर्म है ॥

सुत ! पश्चिमी भाषा पढ़ो, ये ही रटाता गान है,
मानो पिता ही पुत्र को ; मदिरा कराता पान है ॥
मधु जानकर या दे रहा; विषका चषक भरकर पिता,
अथवा पिता ही पुत्रकी; कर से लगाता है चिता ॥

या त्याग कर तनुराग को; विस्फोट मस्तक पर मलें,
या पुष्प-पथ को छोड़कर; वह कण्टकित-पथपर चले ॥
या व्याल मुखमें डाल कर उँगली न मरने से डरे ;
लख लख सुलक्षण हाय ! सुतके रातदिन जल जल मरे ॥

विद्यालयोंमें रातदिन सब; छात्र पढ़ते पाठ हैं।
कुछ ज्ञान तो होता नहीं पर; चाटते नित चाट हैं ॥
या चार पैसे का चषक वे; चायका लेकर पियें।
क्यों स्वस्थ रोगी हो गये ? जो तप्त पानी भर पियें ॥

क्या चाटनेसे आज 'कोटोजम'; हुआ यह हाल है ?
रोगी रहें हम हर समय; कैसा भयङ्कर काल है ॥
अब शुद्ध घी या दूधका; मिलता न दूण्ढे नाम है ;
सब रिक्त पौरुष आज बस; कङ्काल है या चाम है ॥

बल धारणा मानव ! कहो; कैसे रहे इस कालमें ?
रहते फँसे अब छात्र सब ; कोमल कलीके जाल में।
कैसे नहीं वे भी फँसें ? कलियाँ रहें जब सामने ;
अलि-वटुक-दलको अब सुकलियों, के लुभाया चामने ॥

पढ़ते हुए विद्यालयों में ; युवतियाँ देखा करें ;
प्रिय पाठ पढ़ते छात्र नख शिख कुचों का लेखा करें।
तिय - सर्पिणी वेणी लटकती; दृगोंमें मदिरा भरी।
रिपु-रक्त-प्यासी देवियाँ अब रिझातीं बन कर परी ॥

कल-तन्तुसी तन्वी-कमर या; कञ्ज-लोचन खिल रहे ;
ये आज मतवाले भ्रमर-समुदाय जिनपर हिल रहे।
सब साथ पढ़ते साथ चलते, युवतियों के संग में ;
छोटे बड़े सब रँग रहे ; इनके अलौकिक रङ्ग में ॥

कलियाँ न खिल होतीं कुसुम; रहतीं कली के रूप में ;
गिरने लगीं कलियाँ तभी अब, वासना के कूप में।
पढ़ते हुए करते सुभग-रति-शास्त्र ही से प्रीत क्यों ?
खाते हुए चलते हुए गाते; उसीके गीत क्यों ?

अब हाय ! अपने आश्रमोंकी; क्या व्यवस्था हो रही ?
जो ब्रह्मचारी थे कभी अब; यह अवस्था हो रही ॥
कर नष्ट अपनी सभ्यता हम, हैं किसीके हो गये।
आलस्य युवकों में भरा सब 'तान लम्बी सो गये' ॥

जो काल अपना 'मित्रवर' ! सब जिन्दगी का सार है,
उसपर अरे युवको ! सुनो, अब अन्यका अधिकार है।
हम मान करते थे कभी रे! वेद के वक्तव्य का,
शुभ सार जिसमें छिप रहा; ब्रह्माण्डके कर्त्तव्यका ॥

अब भूल बैठे उन सभीको, पढ़ रहे कुछ अन्य हैं,
हा! हा! हमारी सभ्यताको, धन्य है बस धन्य है।
अब उपनिषद् पढ़ते न पढ़ते, हैं पुराणों की कथा,
क्यों त्याग अमृत-उदधि-पावन, आज रोते हैं वृथा॥

जो कुछ किसीके ग्रन्थका, समुदाय मानव दिप रहा।
बस उसीमें उसका पतन, उत्थान, जीवन, छिप रहा॥
हम त्यागकर अमृत-उदधि, अब हो गये परतन्त्र हैं।
सबके लिय श्रुति वेद के, उत्थानदायक मन्त्र हैं॥

पर वेद भाषा देशमें हैं; आज कितने पढ़ रहे?
सब पश्चिमी की ओर हँस हँस, वेग से हैं बढ़ रहे॥
सम्पूर्ण जिसका व्याकरण, पढ़ते न उसको छात्र हैं;
मानो सुधा को छोड़ भोले, भर रहे विषपात्र हैं॥

सच, अब पठन गुणसे नहीं, भाषा भणितका हो रहा;
'यह चाल भेड़ा चल रही' सब स्वत्व मानव खो रहा।
जो शुद्ध भाषा-मातृ-पयसम, 'मित्र'! है संसार में;
माँ-अंक में बैठे जिसे लाते रहे व्यवहार में॥

अभ्यस्त अपनी है गिरा; जिसको सुनाने के लिये;
इच्छा जिसे इच्छुक हुई, पढ़ने पढ़ाने के लिये।
मन कान भी अभ्यस्त जिसको 'मित्र'! सुनने के लिये;
वह जलधि जिसमें रत्न-दल की खान चुगनेके लिये॥

अभिप्रेत-फलदायक सभी, जिसको कहें संसार में ;
हिन्दी वही है कल्पतरु इस, विश्व पारावार में ;
वह जलद जीवन मोतियों की, जो सदा बर्षा करे,
वर मेदिनी लखकर जिसे मन, मोद भर हर्षा करे ॥

पर हाय ! ऊसर में बरसते; मोतियो के जाल हैं :
उन मोतियों को नष्ट करने के लिये हम काल हैं।
शुचि मेदिनी वह भी सुधा, पीकर सदा सरसा करे ;
जब जलद जीवन की कभी मन मुदित हो बर्षा करे ॥

होती सुश्यामल मेदिनी जिस; शुचि सुधा के पान से ;
रोमांच होता मेदिनी के, क्या जलद के दान से ?
जब मेदिनी ऊसर भला, घनका, कहो, क्या दोष है ?
रे लम्पटों ! क्यों देव भाषा पर हुआ यह रोष है ?

पढ़ पढ़ किसी की सभ्यता; तम-गर्त में जाकर गिरे ;
फिर पहिनकर पतलून चिथड़ा; झाँकते दर दर फिरे ।
बटुवृन्द की क्या सभ्यता है ? आज भारत देश में ;
जकड़ी पड़ी है सभ्यता बस; आज बन्दी वेष में ॥

उपहास करने में किसीका सभ्यता अवशेष है :
तम-गर्त में जिससे गिरें उनका वही उपदेश है ?
प्रिय-'मित्र' ! शिष्टाचार उनका; है यही इस काल में ;
कर कर कुनिन्दा डूबते वे, पापरूपी ताल में ॥

जो न्यायसङ्गत बात भी; कहने लगें उनसे कभी ;
वे तर्क द्वारा 'कान खा, ; खण्डन करें उसका तभी।
अब बटुक को मण्डन प्रिय ; प्यारा न अपना धर्म है ;
सब भूल बैठे छात्रगण ; क्या आज अपना कर्म है ?

मद मोह तन्द्रा ने सभी को ; आज बन्दी कर लिया :
मोती मरालों ने तजे ; हँस हँस गरल घट भर लिया।
कुछ मानसिक-विस्तार ; उनका आजकल होता नहीं ;
बटु स्वच्छ रखता वस्त्र है; पर मलिन मन धोता नहीं ॥

बल सभ्यता गौरव न अब ; बटुवृन्दमें अवशिष्ट है ;
सब भूल बैठे; मानवी-कर्त्तव्य जो निर्दिष्ट है।
झक झक करें सब हर समय ; मन्तव्य पर प्रष्टव्य है ?
कहते हुए सुनते यही ; बस चित्र वह दृष्टव्य है ॥

कैसी अवस्था हाय ! इनकी; आज नीरज-नाभ ! है ?
अब खेल ऐसे खेलते; जिनसे न कोई लाभ है।
बटुवृन्द भारत-देशके. व्यायाम क्या करते कभी ?
असि फेंक दी, भाला न है भूले धनुर्विद्या सभी ॥

बाना नहीं, बरछी नहीं, गदका नहीं छूते कभी ;
शृङ्गार करते मान करते, चूड़ियाँ पहिने सभी।
गुरु शिष्य दोनों भूल बैठे, आज निज कर्त्तव्य को,
व्यवसाय अपना जानकर, शिक्षक पढ़ाते शिष्यको ॥

प्रत्येक की इस देशमें, बजती अलग अब बाँसुरी,
परतन्त्र-भारत - वासियों की; चाल देखो आसुरी।
सब स्वाह कर जलते स्वयं; कङ्काल लाशें खा रहे,
शमशान भारत आज है, भूचाल प्रति पल आ रहे॥

*　　*　　*

पतझड़

चतुर्थ सर्ग

पतझड़ हुआ; पारुष्य–पल्लव; पद्म–पानिप झड़ गये ;
सुषमा सुधा–सन्तोषदायक–सुमन सारे सड़ गये ।
बल–तरणि बूढ़ी बाढ़ में, बस पतन की बेला रही ;
जो खेलता था फूल से; अब; शूल से खेला वही ।।

जो बात करता था हवा से; बन गया ठेला वही;
आचार्य था जो विश्वका अब; बन गया चेला वही।
उनको जलाते अग्नि-कण जो; दहकते-अङ्गार थे;
हा! हा! भँवर वे बन गये; जो नाव के आधार थे॥

चिर-संगिनी-तलवार; चपला सी चमकती थी कभी।
रणक्षेत्रमें छमछम छपाछप; असि लपकती थी कभी॥
बोलो अरे बोलो! कहाँ अब; तड़पती तलवार है?
राणा, शिवा सा अब कहाँ; वह मातृ-भू का प्यार है?

पिटते किसीसे आज वे; जो पीटते कल तक रहे।
वे भेड़ बकरे बन गये; जो सिंहसे भक्षक रहे॥
देखो पतन की आगमें; वह जल रहा अस्तित्व है,
अपमान बहिनों का सहा; क्या शेष कुछ व्यक्तित्व है?

जिनकी धरा पर धाक थी; तत तड़पती तलवार की,
भट दिग्गजों में दहल थी; जिनके ज्वलित अङ्गार की!
जिनके हृदय में धधकता था; क्रोध का ज्वाला मुखी,
तलवार टूटी उन्हों की, शिशु भगनियाँ उनकी दुखी॥

बुझती जिन्हों की प्यास थी; रिपु के लहू की धार से,
जो राख करते थे जला अरि; दृगों के अंगार से।
शिव-नेत्र बनकर युद्ध में; जो युद्ध करते थे कभी,
लड़ते हुए अरि-काल से; जो जन न डरते थे कभी॥

रिपु से कहा करते सुभट; असि-मृत्यु करमें देख ले ;
तू त्राण पा सकता नहीं; अन्तःकरण में लेखले ।
जो खेलते थे मृत्यु से; पर सर झुकाते थे नहीं ;
मारे बिना जो दानवों को, तोष पाते थे नहीं ॥

रण धधकता ज्वाला मुखी हो; गगन से गोले गिरें ,
नभयान से बिजली गिरे; या सुलगते शोले गिरें ।
अवतार से; शिव नेत्र से जो; वीर घबराते न थे ,
जो शत्रु को जीते बिना; नख केश कटवाते न थे ॥

श्रुति-भेदकर-रणवाद्य सुन; जो, मौन रहते थे नहीं ।
ले हाथ में भाला भयानक; वीर कहते थे यही ॥
रिपु का लहू पीने; समरमें अम्ब ! जाने दे मुझे ।
जो दूध पावन पिया तेरा; मत लजाने दे मुझे ॥

अरिको मिटाने के लिये; मैं रूप दुर्गे का धरूँ ;
संगीत गादूँ भैरवी; रिपु-सरों से खप्पर भरूँ ।
माँ ! लहू की नदियाँ बहादूँ; काटदूँ रिपु - मुण्डको ;
मैं रुद्र बनकर चीर डालूँ; दानवों के झुण्ड को ॥

पाषाण को भी आज जलते-दृगों से दूँगा जला ,
जञ्जीर लोहे की अभी; अङ्गार से दूँगा गला ।
मैं आग बरसा दूँ समर में; तड़पती तलवार से ,
होगी प्रलय; लरजे धरा; टङ्कार से अङ्गार से ॥

मैं जयपताका आज फहराने; समर में जा रहा,
होगी विजय होगी विजय; यह गीत अन्तर गा रहा।
ऐसे वचन रणघोष सुन; जो वीर वर कहते रहे;
आपत्तियों के शैल जो; सर पर सदा सहते रहे॥

वे हाय! अब रणवाद्य सुन; घर छोड़कर भागते।
सब धन उन्हींका लुट गया; वे भीख दर दर माँगते॥
तन काँपता थर थर उन्हीं का; नाम से तलवार के।
वे हाय! अब उत्सुक हुए; नवयुवतियों के प्यार के॥

अभिमान सोया, आन बेची; खो गया भाला कहाँ,
यह है दशा उस देशकी; थे वीर साँगा से जहाँ।
जो राजपूती-आनके; चित्तौड़ के अभिमान थे,
स्वाधीनता के हेतु जो, गिनते न अपने प्राण थे॥

जो टूटने पर भीत के; दृढ़ भीत बनते थे स्वतः,
रिपु-दल न आये दुर्ग में; वे दुर्ग बनते थे अतः।
तन त्याग कर भट देश हित; वर-विरुद लेते थे कभी,
अधिकार पर वे दुर्ग पर, होने न देते थे कभी॥

अब रत्न हैं जाज्वल्य 'जयमल; से कहाँ संसार में?
जो पंगु था; पर लड़ रहा था; दुर्ग के दृढ़ द्वार में॥
वर वीर कंधे पर किसी के; बैठकर लड़ता रहा;
सौदामिनी सा टूटकर; अरिझुण्ड पर पड़ता रहा॥

रणवीर 'राणा'का हृदय; दुख से भरा; क्षणमात्रको ;
पीने न पर कविने दिया; परतन्त्रता के पात्र को।
नीतिज्ञ अकबर भी न कर; परतन्त्र 'राणा' को सका ;
क्या देश द्रोही 'मान' भी डस; तन्त्र-राणा को सका ॥

कवि धन्य पृथ्वीराज से कवि; आज जगमें हैं कहाँ ?
कवि-कल्पना इस काल में; स्वातन्त्र्य मगमें है कहाँ ?
हाला पिलाते और मधुबाला बुलाते आज हैं।
रस-रङ्गशाला, और मधुबाला सजाते आज हैं ॥

कवि गा रहे हैं भाल की; बिन्दी अनोखी तान में,
या मानवों को कवि हिलाते; मानिनी के मानमें।
कवि कामकी ज्वाला बढ़ा; कर स्वत्व सबका लूटते।
शृङ्गार में जकड़े हुए; कविगण न इससे छूटते ॥

कटि कामिनीकी क्षीण या; फँसते अलक तिय-जालमें।
अभिसार चर्चा कर रहे; कवि भारती इस कालम ॥
भर प्रेम-प्याला पी रहे; कवि कामिनी के प्यारका।
बहुधा भिखारी आज है; कवि सुन्दरी छबि-द्वार का ॥

तियके कटीले दृगों ने; कवि आज बन्दी कर लिया।
मानो सुधा घटसे किसी ने; पात्र विषका भर लिया ॥
नख शिख कथनमें लेखनी; चलती अधिकतर आज है,
लज्जित जिसे लख हो रही; अब लाजवन्ती लाज है।

लिखते समय अनुकूल कविता आज भारतमें नहीं,
चलती न उनकी लेखनी असि- आज मा पतमें कहीं,
लख लट लटकती बालिका; के; अंग चित्रण कर रहे।
कवि आज कविता कामिनीसे, काम वितरण कर रहे॥

वेणी लटकती देखकर; अब चित्र–चट–लेते–बना,
नागिन सटकने के लिये; कवि आज के देते बना।
उस बालिका की लटकती; वेणी न नागिन 'मित्र' ! है,
'ध्रुव सत्य' कहता 'मित्र' ! डसनेको हमें वह चित्र है॥

जिसके पठनसे कामकी; ज्वाला हृदयमें जागती,
कविके हृदयकी रागिनी; मानव-हृदय में रागती।
करते कथन कवि जिस तरह; उसका कथन कैसे करूँ,
पर हाय ! अन्तर-भावनाओं का निधन कैसे करूँ॥

भय है न मेरी लेखनी भी; चल पड़े उस ओर को,
तम में न मिल जाए कहीं; जो टेरता है भोर को।
पर 'मित्र' वर ! तम-गर्तसे; तुमको छुड़ानेके लिये,
तम-पक्षियों को देशसे; फुर फुर उड़ाने के लिये॥

होते हुए रवि के यहाँ; भीषण अँधेरा छा रहा,
फिर क्यों विनाशक नेत्र अब तक; शांत शङ्करका रहा।
शिव नेत्र अबतक शांत है; हम हैं मदनसे मर रहे,
कुच कामिनी के कमल रजसे; फिर सुसज्जित कर रहे॥

पीने पिलानेमें कहो क्यों; आज मानव ! मर रहे ?
अंगूर-दुहिता का कथन; परतन्त्र होकर कर रहे।
वह क्या कला जो नष्ट करदे; मानुषी - आदर्श को,
क्यों व्यर्थमें करते कदर्थित ? कलाके उत्कर्ष को ॥

जो व्यक्त जीवन-रस करे; अनुपम कला बस है वही,
जीवन मिले जिससे सदा; सबको सुधा-रस है वही।
सौंदर्य को सुस्थान देना; ही न कविका काम है,
संसारका कल्याण करने, में उन्हों का नाम है ॥

सत्यं शिवम् शुभ सुन्दरं जिस, काव्यमें मानव ! मिले,
उस काव्यरूपी 'मित्र' से, मुरझे-कमल मनके खिले।
इस देशमें सौंदर्य का; बाहुल्य ही अब हो रहा,
आदर्श भारतका पुरातन; कौन हा ! हा ! खो रहा ?।

हर बातसे हम हाय ! गौरों की प्रवाहित हो रहे,
जाज्वल्य गौरव देशका, कवि हो किसीके खो रहे।
कवि चन्द्रसे प्रिय पाठकों ! अब हैं कहाँ संसार में,
जो बज्र सम तेजस् भरें; टूटी हुई तलवार में ॥

प्रतिशोध की ज्वाला धधकती; थी हृदयमें चन्द्र के,
बस हाथमें थी लाज भारतवर्ष की कवि इन्द्र के।
चौहान था दृगहीन; दुर्बल; शस्त्र तकसे हीन था,
हा ; रक्त उसका सूखकर तब, अस्थियोंमें लीन था ॥

कारागृह की यन्त्रणा फिर, जेलमें अनशन किया,
चौहान ने चिर-बेड़ियों, से हाय ! गठ बन्धन किया ॥
ऐसी दशा चौहान की पर, काव्यने जीवन भरा,
दृगहीन दुर्बल वीरने; सुलतान का मर्दन करा।

नौका किनारे पर करी, टूटी हुई पतवार से,
नर लोक से गौरी, गया चौहान के, शर वार से ॥
कवि 'कृष्ण' से अर्जुन, बनाने के लिये अब हैं कहाँ,
सुभ भावना कैसे भरें, बगले भगत जब हैं यहाँ।

कवि-वृन्द 'भूषण' किस तरह बन, देशकी रक्षा करें,
जो दस्यु को डाकू कहें, वे जेल में सड़ सड़ मरें ॥
तुलसी न हैं अब विश्व में; जो राम घर घर में रमें।
पथ - भ्रष्ट भारत - देश है; पथ कौन बतलाये हमें ?

अब 'कृष्ण-द्वैपायन' कहाँ; गाथा कहें जो देशकी।
रचना न होती आज है; मा भारती ! सन्देश की ॥
अब हैं 'बिहारी' भी नहीं; बिगड़ी दशा इस देश की;
जयसिंह जनता आज है; कवितान पर उपदेश की।

'नर हरि' जगत में हैं कहाँ ? गो वध करादें बन्द जो;
कवि हाय ! 'केशव' भी नहीं; मां का छुड़ादें फन्द जो ॥
अतिरिक्त इनके, और भी; उपदेश-वाहक जो हुए;
कवि सन्त आदिक मानसिक-कटु-कलुष दाहक जो हुए।

शुचि-लेखनी में 'मित्र' सम; उनकी अनोखा तेज था ;
जाज्वल्य रचनायें रचीं; रवि भी हुआ निस्तेज था ॥
होकर प्रफुल्लित लेखनी, यश-गीत उनको गा रही ,
प्रिय पा भुलसती प्रेमिका, मन-मोद भर इठला रही ।

या कृष्य जीवन पा तृषित, पुलकावली दर्शा रही .
अथवा तनयको बाँझ पा, निज अङ्क ले हुलसा रही ॥
माँ क्या कहूँ, कैसे कहूँ ? कविकी अलौकिक है कथा ,
आंसू बहें लिखते हुए कवि, आजकल के की व्यथा ।

बालक बिलखते पय बिना, तिय रो कहे, धोती नहीं ,
निशिदिन यही धुन है उसे, पल एक को सोती नहीं ॥
मा भारती ! कैसे कहू ? आने लगी अब लाज है ।
कवि दान करता भावनाका: बिटपि अक्षय आज है ॥

चलता हुआ पथपर विषम;पथ सुगम जगहित कवि करे।
जाता जहाँ कवि भारती ! जाता हुआ रवि भी डरे ॥
कवि एक घटमें भर दिखा, देता है सागर को महा ,
फिर प्रलय पारावार कर देता है गागर को बहा ॥

वह बूँद वारिदकी पकड़कर; गगन के तारे गिने ,
प्रत्यूषमें हँसता हुआ कवि; ओसके मोती बिने ।
जब गगन-चुम्बी क्रोध की; लपटें भयङ्कर फूटतीं ,
जलते हुए जब लोचनों से रोष सरिता छूटती ॥

कविता-सलिलसे शान्त कर देता भड़कती आग को ;
डसता भणित-कटु-मोंरसे; कवि क्रोधरूपी नाग को ॥
भयभीत होता भय जहाँ; कवि निडर उस पथपर चले,
सुनकर भणित-नर पंगु भी; झट पैर रख रखकर चले।

कवि प्राण भर देता पुनः जो हैं मृतक, क्षण एक में।
ब्रह्माण्ड का कर कवि दिखा देता; सुलक्षण एक में ॥
ऋतु-शरद को सावन बना दे; असम्भव सम्भव उसे,
पर आज मानव ! दीख पड़ता; देश- भारत शव उसे।

तलवारमें बल है नहीं; जो है गिरा-वर तेज में'
उनको जगा देता भणित; जो कुम्भकर्णी सेज में ॥
जिसमें अमित-शुचि-रम्य-फल; कविता-मधुर-उद्यान है,
कवि - कल्पना उद्यान में; गाती सलोने गान है।

शुभ-भावनाओं के कुसुम; उसमें खिले रहते सदा,
सुन्दर-सरोवर; काव्य-रस जिनमें भरा, बहते सदा ॥
प्रति चरण सुन्दर विटपिमें; प्रिय नीड़ पाठकगण बना,
वे ब्रह्मसुख चखते सदा; मन; काव्य-रस जिनका सना।

आदर्श के शुचि-रम्य फल; उद्यान में रहते लगे,
कर भक्त जन-पक्षी सदा; आनन्द - रस रहते पगे ॥
अक्षर अनेकों मंजरी लख; सुमन मानव ! खिल रहे,
प्रिय-रम्य-उत्पल-छन्द पर; भोले भ्रमरगण हिल रहे।

वे वापिकायें बागमें नव-रस-सुधा जिनमें भरा,
'ध्वनि, चित्र, मध्यम'-काव्य-पल्लव से सदा रहता हरा ॥
जिन अलङ्कारों से सजी कविता छबीली बन फिरे,
वे ही कुसुम-शुभ सुस्तवक उद्यानमें मानव! थिरे।

माधुर्य; ओज; प्रसाद गुण; प्रति-चरण-तरुमें मटकते,
वे वधुर-तीते मिष्ट आदिक सुफल उनमें लटकते ॥
लिपिकी सलोनी-घास उपवनमें सदा रहती लगी,
शुचि-सलिल- शीतल-पवन-श्रम-जल; भावरूपीसे पगी।

ऐसी अलौकिक वाटिका हित; आज पर सुस्थल कहाँ ?
अब देश उस पथपर चले, अति दूर तक दलदल जहाँ ॥
परतन्त्र होनेपर दशा इस देशकी ऐसी हुई,
भारत रसातलको गया; हा! दैव! यह कैसी हुई ?

ताले गिरापर लग गये; भूखा बिचारा देश है,
पग शृङ्खलाओं से बँधे बस; अर्गला ही शेष है ॥
मन सह रहा है मौन हो; शर से बचन प्रत्येक के
हा! लिख रहा दिन आँसुओं से; हृदयके अभिषेकके ॥

* * *

श्रमिक

पञ्चम सर्ग

फटे पुराने कपड़े पहिने ;
आता मजदूरी करने ।
चाराने में भोला भाला ;
कड़ी दुपहरी में मरने ॥

पेमँद लगी हुई ऊँची सी ;
धोती पहिने आता है ।
मैले से चिथड़े में रोटी ;
बाँध बिचारा लाता है ॥

पहुँच काम पर ; रख कर रोटी;
मजदूरी करने लगता ।
तसला लेकर जा तगार पर ;
वह गारा भरने लगता ॥

सर पर गारे का तसला रख ;
चला आ रहा बेचारा।
सने हुए चिथड़े गारे में ;
घुटनों तक उसके गारा॥

टपक रही हैं माथे पर से ;
विपुल पसीने की बूँदें।
तसले में से टपक रही हैं ;
उस पर गारे की बूँदें॥

रख कर तसला पास राज के ;
ईंटें लेने जाता है।
सर पर ईंटें धरे बिचारा ;
लपका लपका आता है ;

रख कर ईंटें ; उठा कनस्तर ;
पानी भरने को जाता।
श्रमिक भीगता हुआ सलिल से ;
बोझा लिये चला आता॥

रख कर पानी ; जहाँ तनिक वह ;
बीड़ी पीने बैठ गया।
'बीड़ी पीता है सारे दिन' ;
कह कर मालिक ऐंठ गया॥

झिड़की खा खा कर मालिक की,
बीड़ी श्रमिक बुझा देता।
जाता हूँ; बाबूजी ! कहकर;
तसला दौड़ उठा लेता॥

दाल माँग कर दोपहरी में;
रोटी खा लेता सूखी।
वह भी मिलती कभी कभी है;
कभी कभी खाता रूखा॥

बहा पसीना अपना गाढ़ा;
ऊँचे महल बना देता।
जिसके बदले में मजदूरी;
केवल चारने लेता॥

इसके ही दम से पीते हैं;
मदिरा, सब पीने वाले।
इसके ही दम से सोते हैं:
महलों में सोने वाले॥

इसके दमसे 'ताज महल' जो –
सुन्दरता में चूर बना।
हँसने को तो और बहुत हैं;
रोने को मजदूर बना॥

इसको चैन न लेने देते;
महलों में रहने वाले।
इसके बालक पय को रोते;
वे पीते मदिरा-प्याले॥

शाह जहाँ की अमर कहानी;
'लाल किला' इसके दम से।
'ताज महल' से जाकर पूछो;
मान मिला किसके दमसे॥

इसके दमसे 'मोती मसजिद;
विश्व देखता है जिसको।
शाह जहाँ को सभी जानते;
कान जानता है इसको?

गढ़ 'चित्तौड़' इसी के दम से;
इस के दम से भारत द्वार।
इस के दम से चीन देश में;
चमक रही अद्भुत दीवार॥

सारनाथ का सुन्दर मन्दिर;
सुन्दर है इस के दम से।
'लण्डन' का अद्भुतपुल अद्भुत;
सत्य कहो; किस के दम से?

इसका विपुल लहू लग लग कर ;
रँगा हुआ 'तख्ते ताऊस'।
इतिहासों में गढ़ इमारतें ;
खड़ी श्रमिक का लोहू चूस॥

दुर्ग न दुर्गम जिनसे होते ;
इसने यन्त्र बना डाले।
अद्भुत अद्भुत उड़ने वाले ;
अगणित अस्त्र रचा डाले ;

विध्वंसक वह आग उगलने-
वाले यान बनाये हैं।
स्वर्गलोक लज्जित हो जिनसे ;
ऐसे नगर बसाये हैं॥

यह सुन्दर रङ्गस्थल रचता ;
इस बिन सब सूना श्मशान।
जितना भी करले थोड़ा है ;
दुनिया भोले पर अभिमान॥

इसकी महनत की मजदूरी ;
उसको मिलती आज कहाँ।
आज कहाँ शाशन पहला सा ;
आज धर्म का ताज कहाँ ?

रहने तक को नहीं झौंपड़ी ;
जग इस से कड़वा बोला।
किसी सड़क के एक किनारे ;
पड़ जाया करता भोला॥

सी, सी, करता चिथड़े पहिने ;
ओढ़ फटी हुई चादर।
आहें सटका करता भोला ;
ठण्ढी ठण्ढी श्वासें भर॥

काँप रहा तन बँधी किड़किड़ी ;
बोझा धरा हुआ सर पर।
नङ्गे पैरों बाबू जी का ;
बिस्तर ले जाता ढो कर॥

हम भी तो देखें कर लेवें ;
मजदूरी आकर धनवान।
ओ रे ओ मजदूर ! तुझी पर ;
कर सकता है जग अभिमान॥

धन्य धन्य अपनी महनत का ;
तू क्या लेता है मजदूर ?
तेरा विपुल पसीना लेकर ;
बरसा करता नभ मजदूर।'

राखी

षष्ठ सर्ग

पुलकित - पद्म-पराग ; पल्लवित-
पुष्प ; प्यार की प्यारी बेला ।
उजड़ चुकी ; शमशान बनी है ,
क़ब्र चिताओं पर अब मेला ॥

हरियाली के झुरमुट में से ,
छवि घन-पट का घूँघट खोले ।
जहाँ दिखाती स्वर्णिल-आभा ;
अब उस थल पर 'उल्लू बोले' ॥

रङ्गस्थल शमशान बना है ,
पिञ्जरा एक धरा है जिसमें ।
ताली लिये घूमते डाकू ,
भारत बन्द पड़ा है उसमें ॥

देखो पिञ्जरे में जकड़े मुझ,
बन्दी की आँखों का पानी।
बजा बेड़ियाँ गाता रहता,
सुनलो मेरी करुण-कहानी॥

सदियाँ बीतीं; पड़ा हुआ हूँ,
बजा रहा झन झन हथकड़ियाँ।
दिन प्रति दिन कैड़ी होती हैं,
बन्धन से बन्धन की कड़ियाँ॥

ढूले पर आँसू ढुलका कर,
ढूण्ढ रहा खोया अतीत मैं।
तीखी तान लगा तसले पर,
हँस हँस गाता रुदन—गीत मैं,

कौन सुनेगा? सब सोते हैं,
मेरा ध्यान किसे कब आता।
बन्धन की जञ्जीरों में हूँ,
टूट गया दुनिया से नाता॥

त्यौहारों! क्यों तुम भी आकर?
उर के छाले छेद रहे हो।
तीखे-भालों से क्यों मेरे—
मन के घाव कुरेद रहे हो॥

दीपावली रुलाती मुझको,
होली मुझे जला जाती है।
रक्षा बन्धन आ कर जाता,
मेरी याद किसे आती है॥

बहिन वेदना ही बन्दी की,
और किसे ममता है मेरी।
बाँध वेदना! तू ही राखी,
बन्धन काटे राखी तेरी॥

जहाँ सरों के ढेर पड़े हैं,
गड़े सींकचे बहिन जहाँ पर।
भगिनी की सुस्मृति में रोता,
भारत भैया आज वहाँ पर॥

पारतन्त्र्य की काट बेड़ियाँ,
आग लगा कर बन्दीघर में।
क्या साहस है? बाँध सकोगी,
राखी तुम भैया के कर में।

बहिन! आज दो चार लहू की,
मैं बूँदें तुमको दूं कैसे?
कैसे दूं आँखों के आँसू?
राखी मैं बँधवा लूँ कैसे?

पड़ी हुईं पैरों में बेड़ीं,
हाथों में मेरे हथकड़ियाँ।
इनका स्वागत; ये राखी है,
ये पावन फूलों की लड़ियाँ॥

साहस हो तो रँग कर लाओ,
उनके गर्म लहू से राखी।
सतलज तट पर जिनकी बहिनें,
लिये खड़ीं हाथों में राखी।

पकड़ादो तलवार बाँध दो
पहिले सी राखी फिर कर में।
उरमें तड़पन; नीर दृगों में;
जलते अङ्गारे अन्तर में॥

बन साकार वेदना भगिनी,
खड़ी हो गई राखी ले कर।
पत्नी भूखी, बन्दी जननी,
रोने लगीं हिचकियाँ भर भर॥

पानी बन आँखोंके पथ से,
बहने लगा हृदय का शोला।
भगिनी लगी बाँधने राखी,
भारत उसे रोक कर बोला॥

राखी बाँध रही हो कर में;
सुलग रही ज्वाला अन्तर में।
खड़ी बेड़ियाँ डाल हथकड़ी;
डाला मुझको बन्दी घर में॥

जो हैं स्वयम् लुटेरे भगिनी!
न्याय उन्हें शासक कहता है।
जिसका कुछ भी दोष नहीं है;
कठिन यन्त्रणा वह सहता है॥

कोड़े मारे निर्दोषी पर;
पड़े हुए हाथों में छाले।
दाना दिया न दश दश दिन तक;
आज पड़े जीने के लाले॥

माँगे न्याय; चढ़ा दें फाँसी;
यही न्याय है क्या शासक का?
भारत को अधिकार न है अब;
अपना 'रोना रोने' तक का

देख सामने माँ रोती है;
इधर बिलखती पत्नी भगिनी!
इसके अन्तस्तल में भगिनी!
धधक रही है भीषण अग्नी॥

पड़ी पड़ी नयनों के जल से ;
मुझ बन्दी के पग धोती है।
अरी दुलारी मत रो मत रो ;
क्यों रोना अपना रोती है ?

क्या तू पारावार बनाती ?
नयनों का यह जल भर खारी।
नष्ट करेगी क्या नाशक को ?
लख भारत की विपदा भारी ॥

बिधवा आज न जाने कितनीं ;
पड़ीं हुईं रोती घर घर में।
टूट जायँगी इसी समय कल ;
चमक रहीं जो चूड़ी कर में ॥

आज सुहागिन यह लिखती है ;
लगा भाल पर अपने रोली।
गङ्गा तट पर जलती होगी ;
कल जब निर्दोषी की होली –

यह चूड़ी बिछुवे तोड़ेगी ;
छाती धुनती किसी डगर में।
बैठी होगी कल कोने में ;
विधवा बनी तुम्हारे घर में ॥

आज भाल पर इसके बिन्दी;
कल होगा सिन्दूर रक्त का।
कौन इसे विधवा कह देगा?
अमर रक्त है देश-भक्त का॥

लेजा कर मेरी भस्मी को;
उसमें थोड़ा रुधिर मिलाना-
होगा वह सिन्दूर तुम्हारा;
उसको अलकों बीच लगाना॥

बची हुई भस्मी को पत्नी!
अञ्जन बना लगा लोचन में।
अर्थी के फूलों की माला;
गूथ; पहिन इठलाना मन में॥

लख लख तेरी सुन्दरता तब;
मैं बैठा उस पार हँसूँगा।
तुझे रुलाने वालों को फिर;
लेकर मैं अवतार डसूँगा॥

मेरी पूजा हेतु पुजारिन!
मन्दिर कल फाँसी घर होगा।
कल निर्दोषी भोला बन्दी;
फाँसी के तख्ते पर होगा-

और कण्ठ में उसके होगी;
डोर-व्यालनी कल फाँसी की।
फाँसी घर में जलती होगी;
होली कल कारा-वासी की॥

व्याल-रूप यह डोर वही है;
जिस पर भक्त देश के झूले।
बलिवेदी पर रुधिर चढ़ा कर;
लाखों वीर फूल से फूले॥

झूले 'बिस्मिल' झूले 'लहरी';
झूले वीर 'भगत सिँह' इस पर।
'खुदी राम' ने 'नन्दराम' ने;
पावन लहू चढ़ाया जिस पर॥

भारत माँ की जय जय गाता;
कल मैं उस पर झूल जाउँगा।
शव लपेट लेना झण्डे में;
खेल रक्त से खेल जाउँगा॥

अर्थी कन्धे पर धर लेना;
भारत माँ की जय जय गाते।
आना जाना लगा हुआ है;
प्रति दिन आते प्रति दिन जाते॥

तट पर शव की चिता लगा कर ;
अन्तर-ज्वाला से धधकाना।
भारत माँ की जय हो जय हो,
तुमुल नाद में सब मिल गाना॥

गगन चूमतीं लपटें उठकर,
आग लगा दें फाँसी घर में।
विप्लव की चिनगारी उड़कर,
आग लगा देगी घर घर में॥

ज्वाला-मुखी जलें फिर भगनी!
जिसमें जलें जलाने वाले।
पलटेगा जब भाग्य देश का,
वे दिन भी हैं आने वाले॥

खुले रुद्र का नेत्र तीसरा,
नभ से फिर गोले बरसेंगे।
आज सताते हैं जो मुझको,
दाने तक को कल तरसेंगे॥

जलते अङ्गारे उगलेगी,
यह मेरी ज्वाला अन्तर की।
आज दशा जो मेरे घर की,
कल यह होगी उनके घर की॥

झोली ले कर फिरते होंगे;
खाली करी जिन्होंने झोली।
जिसमें भस्म गुलामी होगी;
जलने वाली कल वह होली॥

बहिन! बाँध कर राखी कर में,
आज भावना भरदो वैसी।
नवयुवकों में वीर भावना;
क्षत्राणी भरती थी जैसी॥

केवल दिखलाने की राखी;
आज नहीं है अच्छी लगनी।
लाज बचाने को अब फिरसे;
पहिले सी बनजाओ भगनी॥

बाँध किसी दानव ने माँ को;
बन्दी गृह में डाल दिया है।
बाल बिखेर; डाल जञ्जीरें;
उस दुखिया का रुधिर पिया है॥

देश; और अपनी रक्षा हित,
कटि में बाँध बाँध तलवारें।
साथ बाँध कर राखी कर में,
रण में भेजो भैया प्यारे॥

कहदो कहदो भगनी ! कहदो,
जाकर कारागृह को तोड़ो।
जिसने जकड़ा उन हाथों का,
उसके जाकर हाथ मरोड़ो॥

उसे जलाने को अब भगनी !
भीषण ज्वाला हमें बनाओ।
फिर राणा साँगा का भगनी !
तीखा भाला हमें बनाओ॥

जिससे दुर्बलता उड़जाये,
ऐसा एक बबण्डर लादो।
कर से भैया - कर में भगनी !
चपला सा तलवार सजादो॥

कभी बाँध कर राखी; असि दे,
कह देतीं थीं रण में सर दो।
आज वही उत्साह हृदय में,
बहिन ! बाँधकर राखी भरदो॥

कहदो, पग न हटाना पीछे,
राखी की यदि लाज तुम्हें है।
ले तलवार, लहू से खेलो,
शेष यही अब काज तुम्हें है॥

खालेना उर में भालों को,
पर न घात हो वीर! कमर में।
राखी चमके, चमके भैया!
तलवारों की धार समर में॥

क्षत्राणी का दूध पिया है,
भैया! इसका मान न देना।
राखी, और लाज माता की,
भैया! सर दे कर रख लेना॥

भैया! लगा कालिमा मुख पर;
कभी न अपना मुख दिखलाना।
विजय प्राप्त कर युद्ध क्षेत्र में,
भगनी के उर से लग जाना॥

क्षण-भंगुर संसार यह है;
प्राणों का तुम मोह न करना।
सब को भैया! दो दिन आगे;
या दो दिन पीछे है मरना॥

मरना है जब यह निश्चय है;
फिर मरने से कैसा डरना।
रिपु- मुण्डों को काट काट कर,
रक्त धार से नदियाँ भरना॥

खण्डा लेकर युद्ध क्षेत्र में,
रुद्र रूप विकराल बनाना।
भैया! मान मिटा अरि-दल का;
मस्तक पर जय - तिलक लगाना॥

बाँध सको यदि ऐसी राखी;
शीघ्र बाँध दो भैया-कर में।
ऐसी राखी बहिनें बाँधें;
दो सन्देश यही घर घर में॥

लेकर राखी फिरो घूमती;
भया ढूँढो नगर नगर में।
बाँधो राखी, रण में भेजो;
लटका कर तलवार कमर में॥

क्या कीमत राखी की रुपया?
इसकी कीमत में सर ले लो।
जब तक है परतन्त्र देश यह;
तब तक खेल रक्त से खेलो॥

'रण चण्डी बन, 'काली' बनकर;
काटो रिपु मुण्डों को रानी!
बन जाओ यदि बन सकती हो,
ले कर में तलवार भवानी॥

बन कर 'मैना देवी' रानी !
जाकर जीवित जलो आग में।
उठो उठो यह रोना छोड़ो ;
क्या रक्खा है रुदन-राग में ??

माँ ! मत रो मैं अमर हो गया ;
अमर हो गया दूध तुम्हारा।
लगी कालिमा उसके मुख पर ;
जिसने लाल तुम्हारा मारा ॥

इसी तरह बन्दी कहता था ;
समय समाप्त हुआ मिलने का।
पत्नी पड़ी हुई पैरों में,
पता न था उसको चलने का ॥

कब से थी बेहोश न जाने ;
आँखों से आँसू बहते थे।
वह तो पड़ी हुई पैरों में ;
उससे सब उठ उठ कहते थे ॥

बन्दी पत्नी उठा न पाया ;
दानव ने आ; अलग कर दिया।
बन्द उसे कर बन्दी गृह में ;
हा ! हा ! क्रदन हास हरलिया ॥

जल छिड़का तब दुखिया जागी ;
इधर उधर देखे पगली सी।
देख न पायी जब स्वामी को ;
लखती थी ज्वाला-उगली सी ॥

जिन नयनों से मद छलका था ;
उनसे लगी बरसने ज्वाला।
हाय ! न जाने किसने सहसा ;
चुभा दिया मानस में भाला ॥

पकड़ लिया माँ के पैरों को ;
कहने लगी जोड़ कर दोनों।
साथ रहे जब अब तक दोनों ;
देंगे आज साथ सर दोनों ॥

मैंने वस्त्र नहीं बदला है ;
जब से स्वामी हैं कारा में।
रही अलग पर वही आज तक ;
पति चरणों की रज - धारा में ॥

जो थे कर्णधार दुखिया के ;
उनको चढ़ा रहे हैं फाँसी।
फिर भी खुला न नेत्र 'रुद्र' का ;
अब तक शान्त पड़े 'कैलाशी' ॥

रूप भवानी का धर माँ ! मैं ;
आज पलट दूँ इस काया को ।
शासन-डोर सम्भालूँ कर में ;
अभी उलट दूँ इस माया को ॥

बन्द सीकचों में कर इनको ,
फाँसी घर में आग लगा दूँ ।
छत्र छीन कर मैं नाशक से ;
भारत को फिरसे पहिना दूँ ॥

* * *

भावना

सप्तम सर्ग

कल कल छल छल रुन झुन करती;
आकर कौन जगा जाती है ?
अन्तर-वीणा के तारों को ;
सहसा कौन बजा जाती है ??

किसके नूपुर की ध्वनि सुनकर ;
मानस में हल चल मच जाती।
मौन - निशा की नीरवता में ;
मदिरा-गागर लेकर आती ।।

कहती पीलो पीलो प्रियतम !
पीलो तुम मदिरा के प्याले।
स्वप्निल - महलों में सोते हैं ;
पागल हैं ये दुनिया - वाले ।।

अमर रहेगा; मर न सकेगा;
मेरी हाला पीने वाला।
अमर-लोक से मैं लाई हूँ;
पीलो और पिलादो हाला॥

मदिरालय में पैसे देकर;
पीने वालों को पीने दो।
जिसका अमल उतरता चढ़ कर;
उन्हें वही पी कर जीने दो॥

हुआ स्पर्श जैसे ही उसका;
उसने भोले के कर चूमे।
उधर फूल मुसकाये सहसा;
तरुओं के प्रिय पल्लव झूमे॥

पकड़ लिये जादूगरनी ने;
कौतुक दिखा दिखा मेरे कर।
आलिंगन कर हृदय-सुमन का;
लगी पिलाने मदिरा भर भर॥

उसकी कालियों सी उँगली ने;
रखदी अधरों पर भर प्याली।
पीते पीते हार गया मैं;
हुई न उसकी प्याली खाली॥

न जाने कैसा रस चक्खा ?
जिसने मेरी गिरा पकड़ ली।
रोम रोम में रम कर उसने ;
हृदय-लता से बुद्धि जकड़ली ॥

रहस्यमयी फिर चली झूमती ;
नूतन नूतन दृश्य दिखाने।
नाच उठा नैसर्गिक - कानन ;
हँसी प्रकृति, फिर गाये गाने ॥

उसने अपने जादू की फिर ;
हँस कर एक पिटारी खोली।
ले चित्रित करता जा पागल !
मुझे लेखनी देकर बोली ॥

लगी दिखाने, लगा देखने ;
मैं पागल बन अद्भुत लीला।
कभी लाल रँग, कभी श्याम रँग ;
कभी दिखाया उसने पीला ॥

कुसुम लता का क्रीड़ा करना,
कलियों का अभिसार दिखाया।
यमुना के सुन्दर तट पर फिर ;
बजता प्रेम - सितार दिखाया ॥

कल कल छल छल करते जल के ;
यौवन का उन्माद दिखाया।
विरह-व्यथित की विरह-रागिनी ;
नयनों का अवसाद दिखाया ॥

दिखलाया सरिता के तट पर ;
महलों में बैठी थी रानी।
टपक रहा था उधर किसी की ;
आँखों का यमुना में पानी ॥

बीच भँवर में किसी व्यथित की ;
जर जर नौका डोल रही थी।
मानो यमुना अपने जल से ;
उसका जीवन तोल रही थी ॥

या उसकी आँखों का जल लख ;
यमुना कृष्ण विरह में फूटी।
या पृथ्वी-तल की आँखों से ;
अविरल आँसू-सरिता छूटी ॥

या यौवन उन्माद किसी का ;
सरिता की लहरों में आया।
या लहरों ने लहरा लहरा ;
जर जर - तरणी - तल लहराया ॥

हरी हरी - अभिराम - सलोनी ;
देखी फिर हँसती हरियाली ।
देखी अपर कूल पर मैंने ;
भरी हुई पापों से प्याली ॥
उस भोली - छवि का कर पकड़े ;
हरियाली की ओर चला मैं ।
चली झूमती रहस्यमयी वह ;
चला झूमता प्यार – पला मैं ॥

शैल ; और सरितायें देखीं ;
कल कल करते कण कण देखे ।
सजी हुई प्रकृति - रानीके ;
नृत्य और आभूषण देखे ॥

नील वितान तना था जिसमें ;
मोती लड़ियाँ जड़ी हुई थीं ।
चाँद बीच में चमक रहा था ;
किरणें पथ में खड़ी हुई थीं ॥

ज्योतिष्पथ में रजनी – रानी ;
लिये खड़ी थी दीपक - माला ।
अमृत छिड़क रही थी मग में ;
लिये सुधा घट शशि की बाला ॥

प्रकृति-रानी पुष्प सेज पर;
बैठी थी अवगुण्ठन खोले।
मधुकर मँडरा मँडरा मुख पर;
हँस हँस धीरे धीरे बोले॥

सुन न सके दुनिया - वाले कुछ;
जानें क्या करते थे बातें।
पर मैंने जा निकट उन्हों के;
जोड़ लिये जीवन से नाते॥

सुनने लगा उन्हों के मुख से;
किसी व्यथित की करुण-कहानी।
सुनते सुनते बँधीं हिचकियाँ;
बहने लगा दृगों से पानी॥

निज किरणों से कमल खिलाने;
रवि छिपता; जब दिन ढलता था-
एक पथिक भीगे - नयनों से;
उर में प्यार लिये चलता था॥

ऊँची नीची पग डण्डी पर;
प्रेम-सितार लिये जाता था।
मन ही मन में घुलता जलता;
कुछ उर को पीड़ा गाता था॥

पथ में पर्वत खड़े हुए थे :
सर्प अनेकों थे डसने को।
इस लम्बी चौड़ी दुनिया में ;
कोना कहीं न था हँसने को ॥

दूर क्षितिज पर एक दीप बस ;
कुछ धुँधला धुँधला जलता था।
जिसको किरणों का कर पकड़े ;
स्नेह-लक्ष्य पर वह चलता था ॥

ठोकर खा खा कर चलता था ;
उसके पैरों में थी कम्पन।
आँखों में आँसू थे उसकी ;
मानस में होती थी धड़कन ॥

करता तर्क वितर्क स्वयम् से ;
चला जा रहा था एकाकी।
रूठ गई थी दुनिया सारी ;
एक लक्ष्य था उसका बाकी ॥

पहली सीढ़ी तक जा पहुँचा ;
गिरता पड़ता वह बेचारा।
चिपक भींत से फिर पैड़े की ;
लगा बहाने आँसू - धारा ॥

खड़ा रहा ; फिर सोच सम्भलकर ;
चुपके चुपके पैर बढ़ाया।
रोता रोता बढ़ता बढ़ता ;
अन्तिम सीढ़ी तक आया –

तभी किसी का स्वर कानों में ;
आया बन भूकम्प दौड़ कर।
बींध गया। उसका अन्तस्तल ;
निकल गया वह हृदय तोड़ कर ॥

गिरा दिया ऊपर से नीचे ;
निष्ठुर के प्रलयङ्कर स्वर ने।
गिरते ही उस प्रणय-पथिक का ;
माथा चूम लिया पत्थर ने।

डला मारकर या मस्तक पर ;
रोली–टीका किया किसी ने।
या अपनी गोदी में सहसा ;
पत्थर बन ले लिया किसी ने ॥

लोक–लाज से उठकर सहसा ;
खड़ा हो गया पथिक बिचार।
लहू टपकता था मस्तक से ;
लगा ढूँढने एक सहारा ॥

नाच रही थी अभी दृगों के-
आगे बीती हुई कहानी।
धक्का देते समय किसी की;
छिपा हुआ आँखों में पानी-

और किसी के दुतकारे उस-
उर में चुभा रहे थे भाले।
लज्जा की जञ्जीर पड़ी थी;
उसकी वाणी थे ताले॥

मौन रही; पर बेचारी का;
अन्तर हाय! फटा जाता था
आँखों के अन्दर आँसू थे;
पर मानस भर भर आता था॥

देख देख अन्याय विश्व का;
फूट फूट कर बादल रोये।
दीवारें रो रो कर बोलीं;
पगले! वे हँसते दिन खोये॥

भोले! खिला फूल लख माली;
हँस कर तोड़ लिया करता है।
किसी कली के नवयौवन से;
नाता जोड़ दिया करता है॥

वह भी उसे हृदय में रखकर ;
फिर पैरों से कुचला करती।
उसको दुनिया ठुकराती है ;
जिस पर दुनिया मचला करती ॥

शलभ प्रेम-पथ पर चलता है ;
उसे छिपकली खा जाती है।
निष्ठुर मालिन सुमन लगाकर ;
उसे तोड़ने भी आती है ॥

भ्रमर बिचारा भटका करता ;
कोई मुसकाया करता है।
कोई रोता रहता, कोई ;
मिलन-गीत गाया करता है ॥

इस दुनिया की रीति यही है ;
प्यार कहाँ अन्याय भरा है।
तपा लिया, तप चमका सोना ;
कहा न फिर भी स्वर्ण खरा है ॥

थक कर पथिक बैठ कोने में ;
लगा देखने दुनिया सारी।
मिला न सुमन कहीं भी उसको ;
ढूँढ फिरा वह क्यारी क्यारी ॥

उजड़े खँड-हर, ढेर राख के;
कङ्कालों के क्रन्दन देखे।
पड़े हुए बन्दीगृह में फिर;
अगणित भारत-नन्दन देखे॥

पहिनी जंजीरें लोहे की;
कारागृह का कोना देखा।
भारत के अणु अणुमें अगणित;
अबलाओं का रोना देखा॥

फाँसी के तख्ते पर लाखों;
दीवानों को चढ़ते देखा।
काल कोठरी में भारत की—
ललनाओं को सड़ते देखा॥

धन वालों की दुनिया देखी;
निर्धन का संसार न देखा।
अणु अणु ढूँढा पर भारत में;
लेशमात्र भी प्यार न देखा॥

करते घृणा हृदय में रख कर;
क्या इस जग में प्रीति यही है?
अपना कह कर ठुकराते हैं,
क्या इस जग की रीति यही है?

कोना कोना ढूँढ फिरा मैं,
दुनिया में सन्तोष न देखा।
पिलते देखा, पिसते देखा,
मजदूरों को होश न देखा॥

बोयें वेही, काटें वे ही,
पर दाने दाने को तरसें।
क्यों न आज श्रमकों के श्रमकण,
बन बन कर अङ्गारे बरसें॥

देखे पड़े पुष्प ठुकराये,
होती देखीं शिशु-हत्यायें॥
मनती देखीं कहीं दिवाली,
जलती देखी कहीं चितायें।

न जाने किस किसके मैंने,
अश्रु दृगों में छिपते देखे।
बीस रुपये में नवयुवकों के—
हाय! हाय! सर बिकते देखे॥

पर न अभी तक काटीं बेड़ी,
कटा कटा युवकों ने मस्तक।
बन्दीगृह से ध्वनि आई यह,
जाग जाग युग के परिवर्तक॥

आवाहन करती है जननी,
कहती सोता देश जगा दे।
तू विप्लव की चिनगारी बन,
बलिदानों के ढेर लगा दे॥

* * *

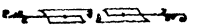

दुखियारी

अष्टम सर्ग

यह कौन आ रही दुखियारी ?

गिरती पड़ती ठोकर खाती,
नयनों से पानी बरसाती,
साकार-वेदना सी आती,
मन मन में कुछ गाती जाती,
रोती रुक रुक विक्षिप्तासी,
आती किस विपदा की मारी।

यह कौन आ रही दुखियारी ?

दुखियारी

हाथों में नहीं चूड़ियाँ हैं,
बिखरीं कल-केश अवलियाँ हैं,
पैरों में हाय! नहीं बिछवे,
लड़खाते पथ में कुछ कुछ वे,
पुछ रही माँग पर हाथों में—
हलकी सी महँदी-हत्यारी।
यह कौन आ रही दुखियारी?

अन्तस्तल ज्वाला भर लाया
मुख सुन्दर है पर मुरझाया,
क्यों फूल न यह खिलने पाया?
क्यों अभी बुढ़ापा चढ़ आया?
किस निष्ठुर ने यौवन खाया—
जो मुरझाई, शुचि सुकुमारी।
यह कौन आ रही दुखियारी?

लोचन हैं रिस से लाल लाल,
भृकुटी टेढ़ी मस्तक कराल,
क्यों अधर काँपते बार बार?
उर में ज्वाला का पहिन हार—
उद्गार उगलती आती है,
अथवा विप्लव की चिनगारी।
यह कौन आ रही दुखियारी?

आओ हम भी सुन लें चल कर,
क्या कहती वह रुक रुक पथ पर ?
क्या करना है तुमको सुन कर,
वह कहती आती हिचकी भर,
सो जाओ पड़ कर डरपोकों !
रे तुमको तो निद्रा प्यारी।

यह कौन आ रही दुखियारी ?

वह देखो चलती है गोली,
जल रही जहाँ उनकी होली,
पुछ चुकी यहाँ मेरी रोली,
हो गई हाय ! रीती झोली,
वह देखो देखो तुम देखो—
शव पर भी चला रहा आरी।

यह कौन आ रही दुखियारी ?

वह देखो, नीच पिशाच खड़ा,
सौभाग्य दबाता, खोद गढ़ा,
मेरे स्वामी को हाय ! डसा,
अब मुझे मिटा कर क्रूर हँसा,
! दाह-कर्म भी किया नहीं—
जो जल जाती दुख की मारी।

यह कौन आ रही दुखियारी ?

लुट गई आज मैं निर्धन हूँ;
रानी से हाय! भिखारिन हूँ;
यदि सुन सकते हो तुम पुकार;
तो बहा बहा कर रक्त धार;
मेरी धोती पर रुधिर डाल—
रँग दो धोती भर दो झारी;
यह कौन आ रही दुखियारी?

शोणित से रँग दो तार तार;
वे खड़े चीखते क्षितिज-पार;
उठ मानव! पथ-पथ पर दल-दल;
जो आज न जागे तो फिर कल;
दुखियारी मेरी सी घर घर;
उजड़ी होगी क्यारी क्यारी;
यह कौन आ रही दुखियारी?

* * * *

फांसी

नवम सर्ग

कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

मधु ऋतु-भाभी ! कहतीं होली ;
कैसे खेले भारत होली ;
हाथों में हथकड़ियाँ उसके—
जलती अन्तरतम में होली ;

कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

भारत पर जिसका शासन है ;
वह कहता भारत को डाकू ;
मुझको ही लूट लूट कर जब—
वह भरता नित अपनी झोली।
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

पर अच्छा है मिल लिये आज ;
मैं तो कल चलने वाला हूँ ;
तुम बन्दीगृह में आई हो ;
क्या जलनी है दो की होली ?
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

भर लाईं तुम रँग से लोटा ;
इसके सँग भाभी दे देतीं—
तीखी तलवार मुझे लाकर ;
रँग की तो होली है होली ?
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

देदो मुझको तीखी कृपाण ;
फिर रक्त-धार से हो होली ;
काटूँ बेड़ी हथकड़ी अभी ;
बस आज लहू से हो होली—
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

मैं जेल बनादूँ कुरुक्षेत्र !
शोणित से भर डालूँ सागर ;
दिखलादूँ आज तनिक इनको—
लोहू की लाल लाल होली ;
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

मैं रुद्र रूप धारण करलूँ ;
जलथल नभ लाल लाल करदूँ ;
लोहू की नदियाँ बह जायें—
तब मेरे मन की हो होली ;
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

तसले पर तीखी तान लगा;
मैं करदूँ ताण्डव-नृत्य शुरू;
पाखण्ड मिटादूँ आज सभी—
बदले की जलती है होली;
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

भाभी! भारत की दशा देख;
भूखा मरता "बङ्गाल" देख;
जलती हैं पथ पथ पर देखो—
भारत के लालों की होली।
कैसी होली? किसकी होली
क्यों बहकाती हो कल होली?

अब घोट पिलादो वही भङ्ग—
जिससे परिवर्तन हो जाये;
जब तक शरीर में रक्त-बिन्दु—
खेलूँगा लोहू से होली।
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

फाँसी पर चढ़ फिर पैदा हो-
खेलूँगा बार बार होली;
फाँसी पर चढ़ चढ़ वीरों ने-
भारत माता की जय बोली।
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

जो घाव हुआ है अन्तर में;
क्या देखेंगे करने वाले?
वे व्रण पर नमक छिड़कते हैं-
यह न्याय-तराजू भी तोली।
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

क्यों आँसू छलक रहे भाभी!
यह समय नहीं है रोने का;
फाँसी के तख्ते को देखो-
जलती है देवर की होली;
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

कल जब फाँसी चढ़ जाऊँ मैं ;
तुम राख इकट्ठी कर लेना ;
जो लहू भरा है नस नस में –
लोटा भर कर गाना होली ;
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

तुम बना राख की फिर गुलाल ;
भर कर शोणित से पिचकारी ;
कल खेलो जी भर कर होली :
क्या मेरी भरनी है झोली ;
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

मेरे शोणित की बून्दों से ;
बन जायेंगी झाँसी-वाली ;
तुम बन कर कल "दुर्गे" भाभी !
खाण्डा ले कर खेलो होली ।
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

चमका दो अब रण में खाण्डा ;
अरि मुण्डों की पहिनो माला ;
तुम रक्त-धार से रँग देना ;
जननी की फटी हुई चोली ;
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

तुम रण का बाना पहिन शीघ्र ;
आ जाओ अब रण में भाभी !
क्या सोच रही हो खड़ी हुई—
वह देखो रण-भेरी बोली।
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

जब जय पालो रण में भाभी !
जय-तिलक लगाना मस्तक पर ;
फिर दीप जलाना जी भर कर ;
अब वृथा भाल पर यह रोली ;
कैसी होली ? किसकी होली ?
क्यों बहकाती हो कल होली ?

कह देना उससे घर जाकर;
परिणय जिससे है हुआ देवि!
हाथों में जिसके मेंहदी है—
क्यों मना रही वह अब होली?
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

तज दे सारे श्रृङ्गार अभी;
माथे का पूछ सिंदूर अभी;
चूड़ी बिछवे दे तोड़ अभी;
पुछ चुकी बावली! यह रोली।
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

यह कहते ही कहते सहसा;
छः बजे टना टन घण्टे में;
खुल गई आँख तब बन्दी की;
बस भङ्ग हुई उसकी होली।
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

ले जा कर यम दूतों ने फिर—
फाँसी पर उसको चढ़ा दिया।
दीवारें तब हँस कर बोलीं—
यह आज निराली है होली।
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

बोला फाँसी घर धन्य वीर!
जो तुझे चढ़ाते हैं फाँसी—
उनकी भी जड़ होली पोली;
कल उनकी भी जलनी होली।
कैसी होली? किसकी होली?
क्यों बहकाती हो कल होली?

* * *

कवि

दशम सर्ग

कवि ! लगा आग ; कवि ! जगा भाग ;
धधका ज्वाला ; करदे विनाश।
माँ की आँखों के आँसू लख ;
उठ दमन देख ; कर दमन नाश ;
तेरे हाथों में राज छत्र,
रे ! पहिना माँ को राज वस्त्र,
तू काट बेड़ियाँ कर स्वतन्त्र,
तुझ पर ही माँ को बँधी आश,
कवि ! लगा आग ; कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला ; करदे विनाश।

बलि—वेदी पर सर चढ़वादे,
धड़ की दीवारें चुनवादे,
शोणित से करदे राज तिलक,
प्यासे ! भालों की बुझा प्यास,
कवि ! लगा आग ; कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला ; करदे विनाश।

कवि ! माँ के पय की तुझे शपथ,
भूलों को फिर दिखलादे पथ,
विप्लव का अङ्गारा बन कर,
अब निकले तेरा श्वास श्वास,
कवि ! लगा आग ; कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला ; करदे विनाश।

तेरी कविता अवतार बने,
जननी का सच्चा प्यार बने,
तलवार बने, अङ्गार बने,
या दानव-दल का बने नाश,
कवि ! लगा आग; कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला ; करदे विनाश,

कविता काली विकराल बने,
खाण्डा ; खप्पर, असि ढाल बने,
शिव नेत्र बने, जय नाद बने,
रिपु के शोणित की बने प्यास,
कवि ! लगा आग; कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला, करदे विनाश,

गादे भारत की प्रबल व्यथा,
गादे वीरों की अमर कथा,
रे युग युग का सन्देश सुना,
भारत में फिर दिखला प्रकाश।
कवि ! लगा आग, कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला ; करदे विनाश ॥

तलवारों के शृङ्गार ! जाग,
प्रत्यंचा की टङ्कार ! जाग ;
युग परिवर्तक ! कर परिवर्तन–
कर पूर्व सभ्यता का विकाश।
कवि ! लगा आग, कवि ! जगा भाग,
धधका ज्वाला ; करदे विनाश ॥

प्रतिज्ञा

एकादश सर्ग

लाखों की रसना के कवि पर,
तीखे तीर चला करते हैं।
न जाने कितने घावों पर,
नश्तर रोज लगा करते हैं॥

फिर भी अपने पथ पर भोला,
ठोकर खा खा कर चलता है।
पग पग पर पथ के रोड़ों को,
अपने पैरों से मलता है॥

उर में धधक रहे अङ्गारे,
पर हँसता रहता बेचारा,
सरिता सागर सावन दृग में,
उसको कब किसने पुचकारा।

उसकी आशा, उसका जीवन,
निष्ठुर मुट्ठी से मलते हैं।
लाखों की रसना के कवि पर,
तीखे तीर चला करते हैं॥

अपना सब संसार लुटाकर,
जग में फूल खिलाया करता।
फिर भी उस भोले के उर में,
यह जग शूल चुभाया करता॥

अपनी रानी के आँसू चुग—
वह जग का शृङ्गार सजाता।
उस पर भी निष्ठुर जग उसको,
हँस हँस अभिमानी बतलाता।

यही प्रीति की रीति विश्व में,
भोले रोज जला करते हैं।
लाखों की रसना के कवि पर,
तीखे तीर चला करते हैं॥

कोई सहसा हँस देता है,
कविता को कह कर तुकबन्दी।
कभी पकड़कर शासक कवि को,
कर देता वर्षों को बन्दी॥

कभी विचारी कभी विचारे,
सिसक सिसक कुछ कह देते हैं।
बदले में कड़वे या मीठे,
शब्द विचारे सह लेते हैं॥

पीड़ा के साम्राज्य बीच वे,
भोले हाय! पला करते हैं।
लाखों की रसना के कवि पर,
तीखे तीर चला करते हैं।

छुई मुई का तरु है जीवन,
सुमन-सर[illegible] [illegible]या अलि-कविका।
भीषण अन्धकार है जग में,
घनमें हाय! छिपा मुख रविका॥

अन्धकार में ठोकर खाता—
लिये लेखिनी कवि चलता है।
रवि के साथ साथ चलता है,
रवि के साथ साथ ढलता है॥

दुनिया वाले काले घन-वन,
कवि का यही भला करते हैं।
लाखों की रसना के कवि पर,
तीखे तीर चला करते हैं॥

चलने दो तीखे तीरों को,
कवि भी रह कर मौन सहेगा।
जब तक एक श्वाँस भी तन में,
आगे बढ़ कर विजय कहेगा॥

शीश हथेली पर रख कर माँ;
शीश चढ़ाने कवि आया है।
एक हाथ में शीश एक में,
थाल सजा कर वह लाया है॥

काँटों ही के बीच सुमन भी—
फूला और फला करते हैं।
लाखों की रसना के कवि पर,
तीखे तीर चला करते हैं॥

* * * *

आवाहन

द्वादश सर्ग

कविते ! सोता—देश जगादो ।
जिससे ! युवक युद्ध हित आयें ;
जिससे विप्लव-ज्वाला भड़के ;
जिससे माँ का बन्धन काटें ;
ऐसी अद्भुत-तान सुनादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

जिससे क्रान्ति सफल हो देवी !
जिससे उगलें जलती-ज्वाला ;
विप्लव की चिनगारी बनकर—
घर घर में ज्वाला धधकादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

युवक छोड़ कर हाला बाला–
जिससे खेल मृत्यु से खेलें ;
हँसते हँसते बलि–वेदी पर —
युवकों को चढ़ना सिखलादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

जिससे ललनायें परिकर कस ;
अपना बालक बाँध कमर से ;
चढ़ घोड़े पर लड़ें युद्ध में —
ऐसा महा-युद्ध दिखलादो ;
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

हय की पकड़ लगाम दाँत से :
रण में "दुर्गे" सी लड़ती हो ;
झाँसी वालो के हाथों में —
फिर से तुम तलवार दिखादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

चमक रहे हों बरछी भाले ;
कट कट रुण्ड; मुण्ड गिरते हों ;
तलवारों की खन खनमें फिर—
लड़तो क्षत्राणी दिखलादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

बेड़ी पहिने खड़ा हुआ हो ;
नेत्र हीन चौहान अकेला ;
सन सन करते उसके शर से —
गौरी को गिरता दिखलादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

तज कर हाला , बाला देवी ;
अपनी वीर-रागनी छेड़ो ;
युद्ध-क्षेत्र में तलवारों की —
फिर से तुम झनकार सुनादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

वीर महाराणा लड़ते हों —
टीड़ी दल सम मुगल-सैन्य से ;
फिर से हल्दी-घाटी में तुम —
बहती शोणित-धार दिखादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

टूटें दुर्गों की दीवारें ;
बालायें ले खड्ग हाथ में ;
खड़ी हुई हों वहाँ भींतसी -
अरि-सेना का नाश दिखादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

साँगा के उर में भालों के ;
लगे हुए हों घाव सहस्रों ;
फिर से उस चित्तौड़-दुर्ग में –
लड़ता जयमल वीर दिखादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

खड़े-हुए सब मुल्ला ; काजी ;
चिनवाते हों शिशु भीतों में ;
फिर से दीवारों में चिनते –
जीवित दो बालक दिखलादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

जिससे हो स्वाधीन देश यह ;
पारतन्त्र्य की कटें बेड़ियाँ ;
जिसमें जले आततायी अब –
ऐसी चिनगारी सुलगादो ।
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

जिसने भोले बालक मारे ;
ललनाओं का रक्त पिया है ;
जिसने बन्द किये निर्दोषी ;
देवी ! उसका नाम मिटादो –
कविते ! सोता-देश जगादो ॥

जिसमें बन्दी बर्षों सड़ते ;
जिसमें मिले घास की भूजी ;
जिसमें कच्ची रोटी खाते –
उन जेलों में आग लगा दो।
कविते ! सोता-देश जगा दो ॥

जिसने हथकड़ियाँ पहिना कर ;
डाल डाल पैरों में बेड़ी –
डाले बन्दी अन्ध कूप में ;
उसका दीपक शीघ्र बुझा दो।
कविते ! सोता-देश जगा दो ॥

सींच देश की सूखी खेती ;
करा शीघ्र स्वाधीन देश को ;
अपनी दिव्य शक्तिसे-देवी !
भारत के सर छत्र दिखा दो।
कविते ! सोता देश जगा दो ॥

आहुति

त्रयोदश सर्ग

मातृ-भूमि पर शीश चढ़ा दो, भारत माँ के लाल।
कुण्ठित कर दो तलवारों को, बना सरों की ढाल॥

लाखों वीर-पुजारी माँ के–
जिन तख्तों पर लटके रहते।
सने हुए उनके शोणित से;
फाँसी के तख्ते यह कहते॥

बोल रहे शव उन वीरों के;
चले गये जो शीश चढ़ा कर।
बलि-वेदी पर बलि होने का;
मर कर जगको पाठ पढ़ा कर॥

भारत पर बलि होकर करदो, माँ का ऊँचा भाल।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

टँगी हुईं शूली पर कितनीं ;
खोपड़ियां ललकार रहीं हैं।
वीरों की साकार-भावना ;
कब से तुम्हें पुकार रहीं हैं॥

उरसे उछल रक्त-धारायें ;
देखो गीत भैरवी गातीं।
बलि वेदीपर रुधिर चढ़ादो ;
चीख चीख कर गातीं जातीं॥

जलकर शीघ्र जलादो मानव ! पारतन्त्र्य के जाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

'मैना देवी' की वह जलती ;
चिता तुम्हें ललकार रही है।
सन् सत्तावन की वह देखो ;
जलती आग पुकार रही है॥

वह देखो शमशान भूमि में ;
टूटीं पड़ीं चूड़ियां कितनी।
नभ के तारे प्रति छाया हैं ;
जलतीं वहाँ चितायें इतनी॥

शोणित धार बहा कर वीरों ! डसो विषैला-व्याल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो; भारत माँ के लाल॥

वह देखो, जेलों की तुमको ;
दीवारें ललकार रहीं हैं।
वीरों की हुंकार जिन्होंमें ;
सदियों से गुंजार रहीं हैं॥

भेंट रूपमें दिये पिता को ;
बेटों के सर बुला रहे हैं।
बुला रहे वे, फांसी देकर–
जो सुख निद्रा सुला रहे हैं ;

वीर-'यतीन्द्र, नाथ की कहती, यही भूख हड़ताल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

ऐसे चलो, चले थे जैसे–
'राणा' सरसे कफन बाँधकर।
ऐसे उठो, उठे थे जैसे–
वीर 'शिवाजी' खाण्डा लेकर।

ऐसे बढ़ो; बढ़े थे जैसे–
हल्दी घाटी में दीवाने।
उठो;चलो फिर आज चलें हम;
इतिहासों में नाम लिखाने॥

उठकर चलो युद्ध में मानव ! आज शिवा की चाल।
मातृभूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

अमर शहीदों की हुङ्कारें ;
सदियों से गुञ्जार रहीं हैं।
तलवारों की खनन खनन की;
तानें तुम्हें पुकार रहीं हैं ॥

पृथ्वी तल से नाश उठादो ;
विधवाओं का नाश गा रहा ;
उठो; उठो; उठकर तुम देखो,
गीत यही आकाश गा रहा ;

खड़े हुए उस पार अनेकों; लगा रहे यह ताल।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल ॥

आज क्षुधासे तड़प तड़प कर ;
बालक जीवन श्वांस तोड़ते ;
सर्व नाश हो रहा देश में ;
पशु पक्षी तक प्राण छोड़ते।

अन्न न मिलता है मानव को,
गउएँ घास विना रम्भातीं ;
लाखों गाय भूख से मरतीं ;
लाखों भालों से कट जातीं ;

हाय ! लड़कियाँ बेच रहा है; वह भूखा बङ्गाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो; भारत माँ के लाल ॥

त्राहि त्राहि बच्चे करते हैं,
अन्धकार यह कैसा आया।
भारत भर भूखा सोता है,
फिरभी अबतक होश न आया,

एक सेर का नाज बिक रहा,
वह भी हाय ! नहीं मिलता है,
कागज को क्या भारत चाटे,
कागज का सिक्का चलता है।

नर-कङ्काल खड़े भारत में, देश बना कङ्काल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल ॥

गूञ्ज रही है आज न जाने,
कानों में यह किसकी बोली,
जला रहा है जो भारत को,
उसकी आज जलादो होली।

उन्हें बिठादो इन्द्रासन पर,
दाने दाने को जो तरसें।
जिनसे जले दीनता अपनी,
नभ से ऐसे गोले बरसें ॥

आजाये अब एक भयानक, पृथ्वी पर भूचाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल ॥

आज युगों से दबे हुए फिर,
फूट पड़ें जलते अङ्गारे।
गली गली में डगर डगर में,
चमकें चपला सी तलवारें॥

पीले पीले मानव! पीले;
पीले देश भक्ति की हाला।
माँ की प्यास बुझाने को अब,
बनजा दुनिया में मतवाला।

तेरा ताण्डव नृत्य देख कर, थर थर काँपे काल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

सुलग उठें फिर; धधक उठें फिर,
सर्व नाश के अङ्गारे अब।
चमक उठें शोणित से भीगीं,
रक्त-पिपासी तलवारें अब॥
खनन खनन खड्गोंकी हो फिर,
काँप उठे फिर रिपु-दल थर थर।
आग लगे कोने कोने में,
लहराये भर शोणित-सागर॥

लाल लाल जल,लाल लाल थल; नभमण्डल हो लाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

कट कट रुण्ड-मुण्ड गिरते हों,
लहू बहे फिर डगर डगर में।
कविकी ज्वालासे जल जलकर,
ज्वालामुखी जलें घर घर में॥।
शोणित उबले शोणित बरसे,
बह निकले शोणित धारें फिर;
जिससे उथल पुथल मचजाये,
आज लगें ऐसे नारे फिर॥

भारत के भोले बच्चों का, तनिक देखलो हाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

बन जाये शमशान चितायें;
जलतीं हों दुनिया भर में अब,
जो न बुझाये बुझे जलधि से,
आग लगे वह घर घरमें अब,
लहू पिया है दो बेटों का,
काट काट कर दोनों के सर।
उठो लगादो आग विश्व में,
कहता वह शोणित बह बहकर,

कोमल कोमल कलियों के क्यों, रिझा रहे हैं व्याल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल॥

जलें सींकचे ये लोहे के ;
उगलो उगलो जलती ज्वाला ;
लादो लादा परिवर्तन तुम ,
तोड़ सींकचो का अब ताला ॥

भोले भारत की आहों से ;
आजाये भू पर कम्पन अब ।
धरती: लरजे फटे रसातल ;
शम्पाओं की हो गर्जन अब ।

अरे ! तुम्हारे सर पर बैठा, मँडराता है काल ।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो, भारत माँ के लाल ॥

आज निहत्थों पर चलते हैं ;
नाशक के तीखे असि आरे ।
बन्द किये हैं बन्दीगृह में ;
माँ की आँखों के प्रिय तारे ॥

किसने तुझे रँगा शोणित से ;
कुछ तो कहदे लाल क़िले प्रिय !
सम्भव है तुझसे अतीत का ;
फिरसे गौरव आज मिले प्रिय !

बन्दीगृह में पड़े हुओं को; बीते कितने साल ।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो; भारत माँ के लाल ॥

कितने कूदे प्रलय-उदधि में ;
भारत की नौका खेने को।
हे स्वतन्त्रते देवी ! बैठी—
हो तुम कितनी बलि लेनेको।

देवी ! तेरे दर्शन के हित ;
माँ ने कितने लाल चढ़ाये।
फिर भी इस भारतमें अबतक;
तेरे पङ्कज-चरण न आये ॥

तुझे ढूंढने को किस किसने; डाला जीवन-जाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो; भारत माँ के लाल ॥

चलो 'हथेली' पर सर रख कर ;
स्वतन्त्रता की भूख मिटाने।
रक्त-पिपासी-बलि वेदी की ;
चलो वीरवर ! प्यास बुझाने ॥

शीश चढ़ा देना हँस हँस कर ;
मातृ भूमि का मान न देना।
जैसे भी हो भारत के हित ;
अक्षय-शुचि-स्वतन्त्रता लेना ॥

इस भोले भारत के उर में ; जय माला दो डाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो ; भारत माँ के लाल ॥

हँस कर जो फाँसी चढ़ जाते ;
माँ का पर अभिमान न देते।
धन्य धन्य बलिदान उन्हों का ;
जननी का जो मान न देते ॥
बार-बार बिस्मिल लहरी का ;
लहू तुम्हें ललकार रहा है।
लाल क़िला ले मुकुट हाथ में ;
कब से खड़ा पुकार रहा है ॥
भारत के सर छत्र दिखादो ; करदो ऊँचा भाल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो ; भारत माँ के लाल ॥
कण कण जलकर भस्मी हो फिर ;
भस्मी से निकले अक्षय-धन—
जिसके दर्शन को भारत के ;
ललचाये रहते नित लोचन ॥
स्वतन्त्रता-दुलहन भारत हित ;
जब वर कर लायेंगे बन्दी।
तभी दिवाली , तभी दशहरा ;
तभी मनायेंगे नवचन्दी ॥
छत्र छीनने को नाशक से ; बनो काल विकराल।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ादो ; भारत माँ के लाल ॥

क्रान्ति

चतुर्दश सर्ग

मानव ! उठकर हथकड़ियों को,
तोड़ गिरा दे तोड़ गिरादे।
पारतन्त्र्य की ज़ंजीरों में,
आग लगादे आग लगादे॥

कैसा हिन्दू ? मुसलमान क्या ?
काट काट बन्धन की कड़ियां।
कब तक सड़ा करेगा मानव !
पहिने हाथों में हथकड़ियां॥

मुसलमान ! उठ; क्यों सोता है ?
तेरा ही वंशज था "दारा"।
बन्दी था पर चाकू ले कर,
जिसने रिपु-दल को ललकारा॥

अरे ! विजयकर अखिल विश्वको,
अनिल, अनल, अङ्गारा बनकर ।
आज काम ले उन हाथों से,
जो कल गिर जायेंगे जलकर ॥

तू तो अमृत-सुत है मानव !
फिर क्यों दानव से डरता है ।
देश धर्म पर मिटने वाला,
सदा अमर है कब मरता है ?

जिस शरीर को अमर समझता,
उसे चिता में जल जाना है ।
मिटते ही सुस्नेह दीप का,
रे ! दीपक को बुझ जाना है ॥

दो दिन पहिले, दो दिन पीछे,
सब को इस दुनिया से जाना ।
जागरूक है तू तो मानव !
मरने से कैसा घबराना ॥

चार भाइयों के कन्धे का,
भार अरे ! यह तेरा जीवन ।
मातृ भूमि पर इसे चढ़ादे,
धन्य धन्य होगा जीवन-धन ॥

स्वतन्त्रता का द्वार समझ कर ;
फाँसी के तख्ते पर चढ़ जा ।
चुन जा चुन जा दीवारों में ;
जीवित धरणीतल में गड़ जा ॥

बलिवेदी पर आज चढ़ा दे —
मस्तक पर मस्तक चुन चुन कर-
शम्पाओं की गर्जन लरजे ,
तेरे गर्जन को सुन सुन कर —

सागर की लहरों का यौवन ,
तेरे यौवन से थर्राये ।
रवि का तेज प्रचण्ड वीरवर !
तेरी किरणों से छिप जाये ॥

एक बार फिर पृथ्वी तल पर ,
तू भीषण तूफान उठा दे ।
सन् सत्तावन दिखला कर फिर ,
नाशक का अभिमान मिटा दे ॥

तुझमें अतुल शक्ति है मानव !
उसे जगा ले उसे जगा ले ।
एक बार राणा की फिर से ,
तू तीखी तलवार उठा ले ॥

सरिता, सागर, सावन हारें,
ऐसी कर्कश आग लगा दे।
एक बार फिर इस भारत में,
अरे! महाभारत दिखलादे॥

अपने लोहे से बरसादे;
अनिल, अनल, अङ्गारे फिर से,
समराङ्गण में विद्युत सदृश,
चमका दे तलवारें फिर से॥

आज पुनः कवि के कानों में,
खड्गों की झनकार सुनादे।
उलकाओं को तलवारों से,
पृथ्वी तल पर तोड़ गिरादे॥

ले ले लेले विजय-पताका;
माँ के पय की तुझे शपथ है।
जब तक हो स्वाधीन न भारत;
युद्धाङ्गण ही तेरा पथ है॥

प्यासे भालों की भालों से;
प्यास बुझादे प्यास बुझा दे;
जल में ज्वाला, थल में ज्वाला;
नभ में तू ज्वाला सुलगा दे॥

कवि की आहें निकल रहीं हैं ;
बन बन कर जलतीं चिनगारीं।
उन्हें बुझादे डाल डाल कर —
उन पर शोणित की पिचकारी ॥

अत्याचारों से नाशक के ;
गिरा-सर्पिणी भभक रही है।
आज हृदय में विश्व-विनाशक ;
जलती ज्वाला धधक रही है ॥

उबल उबल कर फूट फूठ कर ;
निकल रहे ये जलते शोले।
धधक रहे हैं सुलग रहे हैं ;
उर में आज आग के गोले ॥

मानव ! उठजा मानव ! उठजा ,
माँ की है सौगन्ध तुझे अब ;
क्रन्दन करती करुण-कहानी ;
तुझसे जलता देश बुझे अब ॥

क्या तेरे कानों में मानव !
माँ की करुण पुकार न पहुँची ?
क्या कानों में हथकड़ियों की ;
अब तक भी झनकार न पहुँची ?

अपने ही हमको डसने को,
आज विषैले नाग बने हैं!
कोने कोने में भारत के;
जलियाँ वाले 'बाग' बने हैं॥

आज पुनः भारत के युवकों!
हाथो में तलवार सम्भालो।
मण्डन मदिरा के प्यालों पर;
धूल स्वयम् हाथों से डालो॥

खड्ग तीर तलवारों से अब;
सज कर चलो चाल मस्तानी।
मरने पर भी शेष रहेगी,
दुनिया में साकार—कहानी॥

भारत के युवकों के बल पर,
भारत पर शासन नाशक का।
फिर भी है अधिकार न युवकों!
दाना एक उठाने तक का॥

भारत के दल बल से नाशक,
गोले गिरा रहा भारत पर।
बना रहे शमशान कहो क्यों?
अपने हाथों से अपना घर॥

इस भोले भारत को युवकों !
लूट रहे हैं आज लुटेरे।
जब तक हो स्वाधीन न भारत;
डालो समरांगण में डेरे॥

हम को लूट लुटेरे खाते;
हम दाने दाने को तरसें।
युवकों ! आज तुम्हारे लोहे—
से नभ से अङ्गारे बरसें॥

जिनसे जल जाये वह नाशक,
जला रहा जो बालक भोले।
गिरा रहा भोले भारत पर,
नभ से जो प्रलयङ्कर-गोले॥

तुम भी उस पर आज गिरा दो,
नभमण्डल से जलते-शोले।
हमें सताने वाला दानव,
दर दर भीख माँगता डोले॥

तुम भी बढ़ो बढ़ाओ आगे,
बहिनों को खाण्डा दे देकर।
फिरें घूमतीं एक हाथ में —,
अपने खाली खप्पर लेकर॥

एक हाथ में असि हो उनके,
पहिने हों मुण्डों की माला।
निकल रही हो जीभ-विनाशक,
उर में हो प्रलयङ्कर-ज्वाला॥

सिंह वाहिनी कर में खाण्डा —
लेकर खनन खनन करतीं हों।
भरतीं हों खोपड़ियों से थल,
शोणित से नदियाँ भरतीं हों॥

काँप उठे आकाश देख कर,
धरा रसातल में धँसती हो।
उनके जलते नेत्र देख कर,
अरि-सेना थर थर करती हो॥

नवबालाओं के बालों में;
गुथे हुए हों माँ के आँसू॥
यौवन, सुन्दरता; स्वप्नों में;
रति-क्रीड़ा में झाँकें आँसू।

अलकों में सिन्दूर न चमके;
चमक रहे हों घाव हृदय के।
छल हो अलिया को छलने का;
करती हों शृङ्गार प्रलय के॥

अरि का लहू पिये हों जिसकी -
दमके मृदु अधरों पर लाली।
लिये आ रहीं हों हाथों में;
जननी के पूजन की थाली॥
भक्षक भस्म करें क्षण भर में;
खोपड़ियों के ढेर लगा दें।
खाण्डों की झनकार सुनाकर;
सोता भारत देश जगा दें॥

खनन खनन करके खड्गों की;
भरले अपना खप्पर खाली।
आँखों के आगे इस घर की;
चोर लिये फिरते हैं ताली॥

लहू - पिपासी — तलवारें ले;
अरि की छाती पर चढ़ जायें।
झण्डा लेकर भाला ले कर;
विजय-लक्ष्मी लेकर आयें॥
बाल बिखेरे कवच पहिन कर,
बन जायें रण में मतवाली।
लाल लाल रङ्ग दें जल थल नभ;
भर भर पियें लहू की प्याली।

विजय पताका लेकर कर में ;
स्वतन्त्रता का पूजन कर दें।
ढेर सरों के लगा लगा कर ;
माँ के उर के छाले भर दें ॥
लीप लहू से दीवारों को ;
दीपमालिका आज मनायें।
खोपड़ियों में घी भर भर कर ;
दुनियाँ भर में दीप जलायें ॥

मुण्डों के कंदील टाँग कर ;
रुण्डों के कलबूत सजादें।
अन्यायी का दीप बुझाकर ;
स्वतन्त्रता का दीप जला दें ॥

भारत की भोली बालायें ;
बन जायें अब झाँसी वाली।
भारत की मधुबालायें अब ;
बन जायें 'दुर्गे' या काली ॥

भारत का बच्चा बच्चा अब ;
हाथों में तलवार उठाले।
एक हाथ में शीश एक में ;
राजतिलक का थाल सजाले ॥

"सरसे कफन" बाँधकर अपने ;
अब के आगे बढ़े चलो तुम ।
नाशक के अगणित-अरिदल पर;
बादल बन कर चढ़े चलो तुम ॥

या तो मातृभूमि पर अब तुम ;
हँसते हँसते शीश चढ़ादो ।
या भारत के राजतिलक का ;
दुनिया को उत्सव दिखला दो ॥

अभिषेक

पञ्चदश सर्ग

जिस दिन राजतिलक होगा ;
अलि ! उस दिन होगा उत्सव ।
मस्ती में भरकर झूलेंगे ;
हँस हँस कर नीरज-अभिनव ॥

इठला इठला झूम झूम कर ;
नाचेगा प्रिय पवन यहाँ ।
याचक गण भी करते होंगे ;
छनन छनन छन छनन यहाँ ॥

पतझड़में भी हँस हँसकर अलि !
नाचेगा ऋतुराज यहाँ ;
जिस दिन हम भोले भारत को ;
पहिनायेंगे ताज यहाँ ॥

अलि ! उस दिन हित रजनी-रानी ;
बैठी है मोती लेकर।
खूब लुटायेगी उस दिन निशि ;
अलि मणि मोती दल भर भर॥
उस दिन रजनी दीपमालिका ;
मेरे मित्र ! मनायेगी।
ज्योतिष्पथ में ज्योतिष्दल अलि !
ज्योतिष्मती सजायेगी॥

लिये हुए बैठा है शशि भी ;
तभी सुधा बरसायेगा।
'मित्र' स्वयम् अलि ! ज्योतिर्कर से;
माँ का मुकुट सजायेगा॥

मधुकर ! एक निराला उत्सव ;
कल ही होने वाला है।
विजय प्राप्त कर स्वतन्त्रता वर ;
भारत लाने वाला है॥
कवि अपने हाथों से; भारत-
का शृङ्गार सजायेगा।
राजतिलक के टीके का कल ;
थाल सजा कर लायेगा॥

झिलमिल झिलमिल दमकेगी अलि !
थाली राजतिलक की कल।
उस थाली में रक्खे होंगे;
एक तरफ रोली चावल॥
जगमग जगमग जलता होगा;
थाली में घी का दीपक।
छिटकायेंगी छटा अलौकिक;
मणिमालायें दमक दमक॥
"मित्र" ! विचित्र पवित्र गुथेगी;
प्रिय ! कल कलियो की माला;
मुझे अभी मत करो अपावन;
वह दिन कल आने वाला॥
माली ! अभी न तोड़ मुझे तू;
मधुकर ! अभी न चूस मुझे।
जब जननी की कटें बेड़ियाँ;
तब ही तेरी प्यास बुझे॥
हथकड़ियों की झनकारों ने;
मुझसे अलि ! यह वचन लिया।
और आँसुओं ने भारत के;
मुझको यह बरदान दिया॥

यही धधकती हुई चितायें;
देतीं अलि! सन्देश मुझे।
अभी! मुझे पावन रहने दो;
यदि अलि! सच्चा प्यार तुझे॥

खूब लुटायेंगी अलि! डालीं;
भरभर कलियों की डलियाँ।
क्रीड़ा करता होगा कण कण;
केलि करेंगी कल कलियाँ॥

हरी हरी होगी उस दिन कृषि;
हरे हरे होंगे उपवन।
ज्वालामुखी फूल उगलेंगे;
मोती बरसायेंगे घन॥

तभी बुझेगी "मित्र"! "मित्र" के;
अन्तर की जलती ज्वाला।
तभी पिलायेगा कवि जग को;
भर भर कर मधु का प्याला॥

जिस दिन राजतिलक का टीका;
माँ के मस्तक पर होगा।
उसी रोज़ कवि की कविता का;
भारत में आदर होगा॥

कल माँ के उर में अलि! कोमल-
कलियों की माला होगी।
उन कलियों में एक कली यह;
पीती पय – प्याला होगी॥

जानी पहिचानी कलि पर कल;
अलि! मस्ती में मँडराना।
प्रिय! जीवन का सार मिलेगा,
झूम झूम गाने गाना॥

मणि मुक्ता-मण्डित-मण्डप में;
मँडरायेंगे मानवदल।
ललित लोल लहरें लहरा कर;
लिपट लिपट लपकेंगी कल।

इन्द्रासन भी लज्जित होगा;
भारत का आसन लख कर।
अन्यायी का "दीप बुझेगा";
दीप जलेंगे अलि! घर घर॥

अद्भुत दीपावली मनेगी;
दीपअवलियाँ दमकेंगी।
दीपअवलियों पर मणियों की;
लड़ियाँ कलियाँ चमकेंगी॥

बाजारों में कंदीलें अलि !
झिलमिल झिलमिल झूलेंगे।
सावन के झूले उनको लख ;
अपना यौवन भूलेंगे ॥

कंदीलों में रक्खे होंगे ;
दो दो चार चार दीपक।
दृग सुस्नेह गिराते होंगे ;
झिलमिल-झिलमिल झलकझलक

सजे हुए बाजारों में अलि !
होगा मस्ती का शासन।
तभी हँसेंगे माँ के लोचन ;
आज बने सावन के घन ॥

द्वार बनेंगे अलि ! सड़कों पर ;
केलों के प्यारे प्यारे।
द्रुम दल-मृदुल दुलारीं कलियाँ ;
कलित सजायेंगी द्वारे ॥

दीप-अवलियाँ जलतीं होंगी ;
जगमग जगमग झिलमिल झिल।
ज्योति जगायेंगी पथ-पथ में ;
लटकीं मणि-मालायें मिल ॥

प्रिय ! तिरंगे झण्डे उन पर ;
लहर लहर लहरायेंगे।
मस्त हवाओं के झोकों से ;
फर फर फर फहरायेंगे॥

भारत के कण कण में उस दिन ;
ऐसे ही उत्सव होंगे।
पर दिल्ली में "मित्र" ! निराले ;
उत्सव कल अभिनव होंगे॥

लगे तिरंगे झण्डे होंगे ;
गली गली में पथ-पथ में।
निकलेगा जलूस भारत का ;
लाखों घोड़ों के रथ में॥

"मित्र" जड़ेंगे उन झण्डों में ;
रवि, शशि, हँसते तारक-दल।
नभ के तारे उतर आयेंगे ;
दमकाने को पृथ्वी—तल॥

उमड़ पड़ेगा मानव-सागर ;
प्यार भरा प्यारा प्यारा।
धरणीतल पर बहती होगी ;
उसी रोज अमृत—धारा॥

पीलो पीलो पीलो पीलो ;
गूंज उठेगी यह बोली।
नभ से अणु अणु में बरसेंगे ;
पान, फूल, अक्षत, रोली ॥

बाजारों में हो जलूस अलि !
लाल किले में जायेगा।
वहाँ किले पर निज हाथों से,
झण्डा कवि लहरायेगा ॥

फिर भारत को बैठायेगा,
सुमनों के सिंहासन पर।
पूजा की थाली ले कर फिर,
होकर खड़ा सुआसन पर ॥

राज तिलक का टीका करके,
माँ का पूजन कर देगा।
फिर जननी के चरणों में कवि,
अपना मस्तक धर देगा ॥

मस्तक भी मस्तक न रहेगा ;
बन जायेगा खिला कमल।
उस नीरज से उड़ती होगी ;
अमर-जवानी की परिमल ॥

अमल-कमल निर्मल-परिमल में-
रवि-किरणें मुसकायेंगी।
व्यथित-हृदय की करुण-रागिनी;
नयनों से बरसायेंगी॥